

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186144

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP--23--4-4-69--5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H352.054** Accession No. **P. G. H39**
S53P

Author **शर्मा, विद्यासागर**

Title **पंचायत राज - 1956.**

This book should be returned on or before the date
last marked below.

पंचायत राज

[पंचायतों के प्राचीन एवं अर्वाचीन विकास का अध्ययन]

४.



विद्यासागर शर्मा



१९५६

हिन्दी प्रकाशन मंदिर

प्रकाशक

बृहस्पति उपाध्याय

हिन्दी प्रकाशन मंदिर

इलाहाबाद

पहली बार : १९५६

मूल्य

साढ़े तीन रुपया

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

प्रकाशकीय

हमारे देश में पंचायतों की परम्परा नई नहीं है। प्राचीन-काल में पंचायतें होती थीं और देश के शासन का संचालन उन्हीं के द्वारा होता था। वस्तुतः उन दिनों शासन विकेन्द्रित था और सत्ता किसी एक ही व्यक्ति के हाथ में सीमित अथवा किसी एक ही स्थान पर केन्द्रित न होकर पंचायतों में निहित थी। लेकिन समय के साथ उनके स्वरूप में परिवर्तन होता गया। ब्रिटिश शासनकाल में इस परम्परा को बड़ा धक्का लगा और ग्राम-राज्य की यह प्रथा तहस-नहस हो गई। भारत के स्वतन्त्र होने पर देश के नेताओं का ध्यान फिर उस ओर गया और उन्होंने पंचायतों का पुनः संगठन किया। आज सारे देश में पंचायतों का जाल-सा बिछ गया है। यद्यपि अभी तक उनका पूर्ण विकास नहीं हुआ है तो भी उनके द्वारा निस्संदेह अच्छा काम किया जा रहा है।

इस पुस्तक में भारत में पंचायतों का प्राचीनकाल से लेकर अबतक का इतिहास दिया गया है। इसे पढ़कर भारत में पंचायतों के विकास की पूरी कहानी तो मालूम होती ही है, साथ ही यह भी पता चलता है कि वर्तमान भारत में उनका क्या स्थान है, वे किस प्रकार काम कर रही हैं और उनका संगठन

आदि कैसा है । इसके अतिरिक्त इस पुस्तक के अंतिम भाग में लेखक ने कुछ मौलिक सुझाव भी दिये हैं जो विचारणीय हैं ।

उपयोगी होने के साथ-साथ यह एक बड़ा ही सामयिक प्रकाशन है । हमें आशा है कि देश के प्रत्येक क्षेत्र में इसका स्वागत होगा ।

विषय-सूची

प्रास्ताविक	१
१. भारत की पंचायती परम्परा	१३-२३
प्राचीन भारत में पंचायतें १३, मध्यकालीन भारत में पंचायतें २४, अंग्रेजी शासनकाल में पंचायतें २६ ।	
२. ब्रिटिश शासन में पंचायतों का पुनरुत्थान	३४-५१
ग्राम्य-संगठन ३५ ।	
३. ब्रिटिश शासन में पंचायतों का विकास	५२-६०
४. स्वतंत्र भारत में पंचायतें	६१-११४
हमारा संविधान और पंचायतें ६२, पंचायतों की आर्थिक अवस्था ६६, स्थानीय वित्तानुसंधान समिति की रिपोर्ट ७१, वित्तानुसंधान समिति की सिफारिशें ८२, कर जांच समिति की रिपोर्ट ८५, कांग्रेस की पंचायत समिति की रिपोर्ट ८८, पंचवर्षीय योजना और पंचायतें १०२ ।	
५. विभिन्न राज्यों में पंचायतें	११५-१६६
अजमेर ११५, आसाम ११७, उड़ीसा १२०, उत्तर प्रदेश १२३, जम्मू व काश्मीर १२५, दिल्ली १२६, पंजाब १२८, पश्चिमी बंगाल १३०, पेप्सू १३१, बंबई १३४, बिहार १३६, भोपाल १३८, मद्रास १३९, मध्य प्रदेश १४२, मध्य भारत १४३, मैसूर १४६, राजस्थान १५१, विन्ध्य प्रदेश १५२, सौराष्ट्र १५४, हिमा- चल प्रदेश १५६, हैदराबाद १५६, त्रावणकोर-कोचीन १६०, कच्छ १६४, कुर्ग १६५ ।	

६. पंचायतों का कार्यक्षेत्र १६७-१६८
शिक्षा १७२, स्वास्थ्य १७६, सहकारी व्यापार १७८, वन-प्रबंध
१८२, पथ-निर्माण १८५, खाद्य १८७, कर-वसूली १९०, न्याय
१९३, विविध १९३, पंचायत घर १९७ ।
७. पंचायती न्याय १९९-२१७
न्याय का ध्येय २०१, राजीनामा २०४, न्याय पंचायतों का संगठन
२०६, न्याय-पंचायतों के अधिकार २१०, अपील २१४ ।
८. पंचायतों का माण्डलिक संगठन २१८-२३६
नगर पंचायत २१८, तहसील पंचायत २२३, जिला पंचायत २२८,
प्रांत, देश तथा विश्व का शासन २३३ ।
- 

पंचायत राज

प्रास्ताविक

यदि हम मनुष्य की प्राणी-जगत के अन्य प्राणियों से तुलना करें और यह जानने की चेष्टा करें कि मनुष्य किन बातों के कारण जगत के अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है, तो हम देखेंगे कि मनुष्य की श्रेष्ठता का सबसे बड़ा कारण है उसकी मनन, सोचने और समझने की शक्ति। इस शक्ति को साधारणतः बुद्धि तथा विवेक के नाम से पुकारा जाता है। मनुष्य को छोड़कर यह शक्ति किसी अन्य प्राणी में नहीं है। इसी शक्ति के कारण मनुष्य का संसार में सभी जीव-जन्तुओं और जड़ या चेतन सभी वस्तुओं में सर्वोपरि स्थान है और उसे ईश्वर की कृतियों में सबसे उत्तम माना जाता है।

जहाँ इस बुद्धि तथा विवेक की शक्ति के बल से मानव ने आज विज्ञान क्षेत्र में महान् उन्नति कर ली है, वहाँ उसने आत्म-रक्षा तथा सुख-सुविधा के साधनों में भी वृद्धि कर ली है। मनुष्य में आत्म-रक्षा तथा वंश-वृद्धि की भावना भी आरम्भ से ही प्राकृतिक रूप से है, और इस भावना के वशाभूत होकर कई बार मानव स्वार्थ से अन्धा भी हुआ है। परन्तु यहाँ भी इसी बुद्धि-विवेक ने उसे सहारा दिया है और सही पथ पर डाला है। यदि यह क्रियाशील मस्तिष्क मानव के पास न होता तो उसकी आदिम स्थिति में आज भी कोई परिवर्तन न आता और आज भी वह वही

पशुवत् जीवन व्यतीत करता होता । हम जब अपने आदिम-मानव पर दृष्टि डालते हैं तो हम उसे किसी कन्दरा में या किसी वृक्ष के नीचे बैठा हुआ पाते हैं । धूप, वर्षा, सर्दी-गर्मी, आँधी-पानी से बचाव के लिए उसके पास कोई साधन नहीं है और हम उसे जंगली हिंसक जन्तुओं के भय से व्याकुल, किसी वृक्ष पर अकेला बैठा हुआ पाते हैं । उसकी दशा बड़ी दीन-हीन है । न कोई निश्चित रहने का ठिकाना है, न घर-वार है, न परिवार है । उसका यदि किसी हिंसक जन्तु से सामना हो जाता है तो बेचारे को उसका ग्रास बनना पड़ता है । घायल या बीमार हो जाता है तो स्वयं ही ठीक हो गया तो हो गया, नहीं तो वहीं पड़ा-पड़ा मर जाता है । कोई उसका अपना नहीं, कोई उसका सहायक नहीं, कोई उसका सगा-सम्बन्धी या मित्र नहीं जो उसकी सहायता करे । हम देखते हैं कि उस समय पारिवारिक जीवन का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था । स्त्री-पुरुष का संसर्ग गृह निर्माण के लिए न होकर केवल शारीरिक भूक भिटाने के लिए ही था । संतति के प्रति दम्पति के मन में कोई कर्तव्य भावना नहीं थी । परन्तु मानव ने अपनी बुद्धि से इस चीज को शीघ्र ही हृदयंगम कर लिया कि यदि एक मानव दूसरे की सहायता करे तो हम लोग अपने दुःखों को, अपने भय को, बहुत-कुछ कम कर सकते हैं और किसी हद तक निर्भय तथा सुरक्षित जीवन बिता सकते हैं । जब भी किसी मानव को अकेले अपने से किसी बलशाली जन्तु का सामना करना पड़ा होगा तो उसे अवश्य ही मुँह की खानी पड़ी होगी और इस हार ने ही उसे संगठित होने के लिए प्रेरणा दी होगी । उस जन्तु का दो-चार मनुष्यों से

वास्ता पड़ने पर उसे जान से हाथ धोने पड़े होंगे । मानव की इस विजय ने ही उसको सहयोग तथा सामाजिकता का पाठ पढ़ाया होगा । इसी प्रकार आगे जीवन के हर स्तर पर मानव को इस बात का ज्ञान भलीभाँति हो गया होगा कि सामूहिक जीवन में, समाज में ही, हमारा कल्याण है, समाज में ही हम हर प्रकार की उन्नति कर सकते हैं तथा सुख-शान्ति से रह सकते हैं । इस विचार से प्रभावित होकर, हम देखते हैं कि मानव-समाज में परिवार की उत्पत्ति हुई, जंगल से पेड़ों के पत्ते लेकर या छालें उतारकर उसने वस्त्र बनाना आरम्भ किया, जंगली जानवरों का मुकाबला करने के लिए औजार बनाये और सर्दी-गर्मी, बारिश-आंधी से बचने के लिए उसने भोपड़ों का निर्माण किया । इस प्रकार धीरे-धीरे मानव-समाज की काया पलटती गई और आज जब हम वर्तमान सुसभ्य समाज को देखते हैं तो यह खयाल भी नहीं आता कि किसी समय वह इस तरह का जीवन यापन करता रहा होगा । मानव की इस उन्नति के पीछे उनकी बौद्धिक तथा मानसिक वे मौलिक भावनाएँ हैं जो उसे अन्य पशु-संसार से पृथक् करती हैं, और वे हैं दया, करुणा, सहानुभूति, उदारता, त्याग, सहिष्णुता, विवेक, स्मृति तथा मनन आदि-आदि ।

मानव समाज के इस वैज्ञानिक-विकास-क्रम के बारे में भले ही मतभेद हो, परन्तु यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि सृष्टि के प्रारम्भ में मानव-समाज में विषमता कम थी । ज्यों-ज्यों विकास के इस लम्बे पथ पर मानव-समाज आगे-आगे अग्रसर होता चला गया, त्यों-त्यों उसमें विषमताएँ आती गईं । मनुष्य स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है और जब से यह मूक प्राणी-संकेतों को

त्यागकर, वाणी का प्रयोग करके अपने मनोभावों की अभिव्यंजना करने लगा, उसका मस्तिष्क उन्नत तथा परिमार्जित होकर निज-हित के साथ-साथ पर-हित की चिन्ता करने की क्षमता प्राप्त करने लगा । इसके साथ-साथ मानव में परिवार, समाज, शासन, राजा आदि सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक संस्थाओं के निर्माण का बीज अंकुरित होने लगा ।

हमें यहाँ इस विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है कि प्रारम्भिक मानव-समाज पूर्ण-रूपेण विकसित तथा उन्नत था या नहीं । यह तो समाज-शास्त्र के विद्यार्थियों का विषय है । पर यह बात सर्वमान्य है कि आदिम मानव समाज में कलह-कल्पना, भ्रष्टाचार, लड़ाई-झगड़ा, दुराचार और अपराध बहुत ही कम थे । लोगों का रहन-सहन, आचार-विचार शुद्ध तथा सादा था । वे सुख, शान्ति तथा समृद्धि से सम्पन्न थे । प्रत्येक के हृदय में बन्धुता तथा मेलजोल की भावना विद्यमान थी । यह सहृदयता, मेलजोल तथा बन्धुता की भावना प्राकृतिक आवश्यकताओं के कारण पैदा हुई या इसको उत्पत्ति का कारण मानव के मौलिक स्वभाव की उदारता थी, इसके बारे में भी बहुत मतभेद है ।

इतिहासकार इसी आदिमकाल को पुराणों का “सतयुग” मानते हैं । महाभारत में सतयुग के बारे में कहा गया है कि सत-युग में सब लोग ब्राह्मण थे और कोई वर्ण भेद नहीं था । हर एक व्यक्ति अपने-अपने धर्म (कर्त्तव्य) का पालन करता था । अपराध नहीं होते थे । राजा की परिपाटी से लोग उस समय अपरिचित थे । दण्ड देने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती थी और न कोई दण्ड देनेवाला होता था । कालांतर में समाज में विकार

उत्पन्न हो जाने के कारण ही वर्णों की उत्पत्ति हुई। इसी तरह से यह भी वर्णन आता है कि विवाह की कोई ऐसी वैध प्रणाली नहीं होती थी जैसी कि आज हमारे यहाँ प्रचलित है। राजा की संस्था के प्रादुर्भाव का कारण बताते हुए महाभारत में लिखा है कि एक ऋषि ने अन्य ऋषि की पत्नी से बलात्कार किया। उस अपराध को सत्यकेतु ने सामाजिक अपराध ठहराया और ऐसे सामाजिक अपराधियों को दण्ड देने के लिए राजा की संस्था का निर्माण किया गया।

राजा की उत्पत्ति की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि कोई व्यवस्थापक न होने के कारण आर्यावर्त में दुराचार और अव्यवस्था फैल गई और सामाजिक नियमों की अवहेलना तथा तथा उपेक्षा की जाने लगी। परिणामस्वरूप आर्य जाति की रक्त शुद्धता नष्ट हो गई और कई अनार्य आर्य जाति में मिश्रित हो गये। इस वर्णसंकरता से प्रचलित मान्यताओं तथा धारणाओं को व्याघात पहुँचने लगा। इन सब कारणों से एक ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी जो समाज में फिर से व्यवस्था स्थापित कर सकें और फल-स्वरूप राजा का जन्म हुआ। परन्तु आर्य राज्य-शासन प्रणाली में राजा का राज्य करने का नैसर्गिक अधिकार कभी नहीं माना गया। राजा को आर्य नियमों के अनुसार दिये गये अधिकारों के अतिरिक्त अन्य कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता था। यदि राजा भी आर्य नियमों की अवहेलना या निरादर करता या कोई अनधिकार चेष्टा करता तो मंत्रिमण्डल अथवा वृहत् राज्य सभा द्वारा उसपर जुर्माना किया जा सकता था। आर्यों ने राज्य शासन के

अनुभव के उपरान्त यह अधिक हितकारी समझा कि राजा को राज्य करने का वंश परम्परागत अधिकार दे दिया जाय। उस काल में राजा से तात्पर्य एक ऐसे नेता से था जो अपनी प्रजा का रंजन करने में, उसका पालन-पोषण तथा रक्षा करने में समर्थ हो। राजा शब्द की परिभाषा करते हुए यह लिखा गया है कि—“यः प्रजाः रंजयति स एव राजा नेतरः ।”

आदिमकालीन इतिहास से पता चलता है कि उस काल में जनता की समितियों के द्वारा ही शासन कार्य चला करता था। यह समिति वस्तुतः उस क्षेत्र के निवासियों के द्वारा निर्वाचित सभा होती थी। वेदों में इस समिति को ‘विशः’ कहा गया है। इस समिति का एक कार्य राजा का चुनाव भी हुआ करता था। यह समिति एक राजा के स्थान पर दूसरे राजा का चुनाव भी कर सकती थी। इस प्रकार वैधानिक दृष्टिकोण से इस समिति को पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। राजा का यह कर्तव्य था कि वह समिति की बैठकों में उपस्थित रहे और यदि राजा समिति की बैठक में उपस्थित नहीं होता था तो उसको जनरंजक नहीं माना जाता था। उस क्षेत्र में रहनेवाले सभी व्यक्ति इस समिति के सदस्य होते थे और ये सदस्य किसी एक सदस्य को निर्वाचन द्वारा चुनकर उसको उस समिति में अपने प्रतिनिधि के रूप में भेजा करते थे। हर गाँव में एक नेता होता था जिसको ‘ग्रामणी’ कहा जाता था। समिति एक स्थानीय संस्था थी। बाद में इसी को ‘परिषद्’ कहा जाने लगा।

समिति के अतिरिक्त ‘सभा’ नामक एक और संस्था थी। सभा में स्वतन्त्रता से विवाद चलते थे और जो निश्चय सभा या

समिति में हो जाता उसका पालन सबके लिए अनिवार्य समझा जाता था । परन्तु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि समिति तथा सभा का परस्पर सम्बन्ध किस प्रकार से आयोजित किया गया था । सभा के प्रधान को सभापति कहा जाता था । इसमें सन्देह नहीं कि सभा एक उच्च कोटि की संस्था थी और निर्णयात्मक कार्य किया करती थी ।

इन बातों से पता लगता है कि प्राचीन भारत में शासन प्रबन्ध का कार्य करने के लिए निर्वाचित संस्थाएँ हुआ करती थीं । यही नहीं, धार्मिक कार्य के लिए भी संस्थाएँ थीं जो कि 'विदथ' के नाम से पुकारी जाती थीं । देश रक्षा के लिए जो लोकप्रिय संस्था थी उसे उस समय 'सेना' कहा जाता था ।

समय के साथ-साथ लोकतांत्रिक पद्धति पर आधारित इन संस्थाओं का विकास होता गया । शिक्षा, अर्थ, व्यापार और न्याय आदि कार्यों के लिए अनेकों स्व-शासित संस्थाएँ विकसित होती गईं । ये संस्थाएँ धीरे-धीरे ग्राम क्षेत्रों के अन्दर शासन के सारे प्रबन्ध कार्य को करने लगीं और समाज का एक आवश्यक अंग बने गईं ।

इन संस्थाओं को सम्पत्ति प्राप्त करने, रहन करवाने तथा रहन रखने के पूर्ण अधिकार होते थे । ये संस्थाएँ भारी अपराधों को छोड़कर ग्राम क्षेत्र में न्याय का कार्य भी करती थीं । इसके अलावा भूमि प्राप्त करना, अनाज संग्रह करना तथा जनता के सेवा के कार्य भी इन्हीं के द्वारा किये जाते थे । इनको श्रम प्राप्त करने का अधिकार भी था और जलाशयों, उद्यानों, सिंचाई के साधनों, नहरों तथा पथों की देखभाल का प्रबन्ध भी इनके ही

अधीन हुआ करता था। अकाल तथा अन्न-संकट के समय इनको जनता की सहायता करने तथा खजाने से ऋण लेने का अधिकार था और कई बार तो ये अपनी सम्पत्ति बेचकर भी जनता की सहायता करती थीं। ये संस्थाएँ अपने उत्तरदायित्वों को निभाने में सदैव सतर्क रहा करती थीं। ये संस्थाएँ ग्रामीणों को डाकुओं तथा शत्रुओं से भी बचाती थीं।

इन ग्राम सभाओं के निर्णय को न माननेवालों को ग्राम-द्रोही कहा जाता था। उस क्षेत्र के समस्त करों को सरकार को देने की जिम्मेदारी भी इन्हीं संस्थाओं पर हुआ करती थी। इनके हिसाब की देखभाल तथा पड़ताल शासन के कर्मचारी किया करते थे और इनके सदस्यों को अपने कर्त्तव्य की अवहेलना पर दण्ड भी दिया जाता था।

ग्राम-सभा को, जिसे 'महासभा' भी कहा जाता था, गाँव के प्रबन्ध के पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। कहीं-कहीं इन सभाओं के पास अपने भवन भी होते थे और अन्य स्थानों पर इसकी बैठकें मन्दिरों में हुआ करती थीं। हरएक कार्य के लिए छोटी-छोटी समितियाँ बनाई जाती थीं। समिति के प्रधान को 'महापुरुष' कहा जाता था। यह समितियाँ जलाशयों, उद्यानों, न्याय, धन-धान्य, मन्दिरों तथा कृषि आदि का प्रबन्ध किया करती थीं।

ग्राम-सभा के चुनाव के लिए ग्राम को दस क्षेत्रों में बाँटा जाता था। हरएक चुनाव क्षेत्र के निवासी एकत्रित होकर इस समिति में रखे जाने योग्य व्यक्तियों की सूची तैयार कर लेते थे। साधारणतः ३५ से ७० साल की आयुवालों को ही इस कार्य के योग्य समझा जाता था। इसके साथ शिक्षा तथा सम्पत्ति

सम्बन्धी योग्यता भी देखी जाती थी। उन व्यक्तियों को, जो कभी पिछली समिति में नियुक्त हो चुके हों और जिन्होंने हिसाब आदि में कुछ गड़बड़ की हो, या जिन्होंने पाँच बड़े पापों में से कोई पाप किया हो, उन्हें इन समितियों में रखे जाने के योग्य नहीं समझा जाता था। ऐसे प्रस्तावित व्यक्तियों में से समितियों के लिए चुनाव होता था और अनुभव तथा शिक्षा के अनुसार उनको समितियों का कार्य सौंपा जाता था।

प्राचीन भारत में राजा का शासन करने का दैवी अधिकार नहीं माना जाता था। उसे प्रजा का सेवक ही माना जाता था। राजा को केवल वही अधिकार प्राप्त थे जो कि कानून के द्वारा प्रजा की ओर से उसे दिये जाते थे। राजा पर जुर्माना किया जा सकता था और मन्त्रिमण्डल या स्वयं जनता की स्वतन्त्र सभा बुरे राजा को पदच्युत भी कर सकती थी। इसके अतिरिक्त राज्य-कर्त्तव्यों की अवहेलना करने अथवा कानून के विरुद्ध आचरण करने पर भी उसको हटाया जा सकता था। वास्तव में राजा का स्थान ग्रामीण (ग्रामसभाधिपति) से अधिक नहीं था। कोई भी राजा मन्त्रिमण्डल के बिना कार्य नहीं कर सकता था। रामायण में भी आठ मन्त्रियों के एक मन्त्रिमण्डल का जिक्र आता है। मन्त्रिमण्डल में एक मुख्य-मन्त्री भी होता था जिसको प्रधान कहा जाता था। इस प्रकार यह कहना अत्युक्ति न होगा कि आर्य भारत में जिस लोकतान्त्रिक शासन-पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ उसकी मौलिक संस्था भारत के ग्रामों में ही उत्पन्न हुई। भारत की प्राचीन शासन-पद्धति के सम्बन्ध में यूरोपीय विद्वानों ने बड़े परिश्रम के साथ खोज की है। इनमें से श्री ई० वी० हैवेल का

नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

हैवेल के अनुसार “आर्य प्रजातांत्रिक पद्धति से अपना शासन-कार्य चलाते थे। प्रजातन्त्र की आधार शिला ग्राम थे । प्रदेश की रक्षा और जीवनोपयोगी वस्तुओं की उपलब्धि सुगमता से हो सके, इसके लिए एक या कई ग्रामों को मिलाकर एक संघ बना दिया जाता था । सारा प्रदेश राजा के अधीन होता था । राजा का पद दो प्रकार से प्राप्त होता था—(१) निर्वाचन से, (२) वंशानुक्रम से । परन्तु किसी भी सूरत में राजा को आर्य-परम्परा पर बने नियमों के विरुद्ध नहीं जाने दिया जाता था ।

“जनता के प्रतिनिधियों की एक वृहत् सभा हर साल अपनी एक बैठक करती थी जिसमें ग्राम परिषद् के लिए पाँच सदस्य चुने जाते थे जो पृथक-पृथक रूप से समाज के पाँच आवश्यक तत्वों का प्रतिनिधित्व करते थे ताकि ग्राम का शासन पूर्णतया आर्य पद्धति के अनुसार चलाया जा सके । सदस्य निर्वाचन से चुने जाते थे । परन्तु कई बार, राजा के समान, कई परिवारों को वंशगत सदस्यता का अधिकार दे दिया जाता था । लेकिन जब भी कोई अपने कर्तव्य से विमुख होता था तो उसका यह अधिकार छीन लिया जाता था । वंशगत सदस्यता का अधिकार होने से कई बार वृहत् सभा केवल परामर्शदात्री मात्र ही रह जाती थी, परन्तु फिर भी जनता के अधिकारों की रक्षा के लिए सभा की राय अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थी । यहाँ तक कि मौर्यकाल में राज्यशासन का भार राजा में केन्द्रित हो जाने पर भी इन सभाओं की राय को बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता था ।”

ऊपर के इस संक्षिप्त वृत्तान्त से यह भली-भाँति स्पष्ट हो

जाता है कि प्राचीन भारत में शासन विकेन्द्रित था और वह ग्राम-पंचायतों के हाथ में था। अतः यदि यह कहा जाय कि यह सत्ता बाद में राजाओं या केन्द्रीय शासन को मिली, तो कोई अत्युक्ति न होगी। अन्य देशों में भी मानव बहुत कुछ इसी तरह से असभ्यता से सभ्यता की ओर बढ़ता गया। आरंभ में परिवार पर परिवार के वृद्ध व्यक्ति का नियन्त्रण था और परिवार सम्बन्धी सभी कार्यों का वही सर्वेसर्वा माना जाता था। इस प्रथा के चिह्न अभी तक मिलते हैं। लेकिन शुद्ध, स्पष्ट तथा पद्धति के रूप में पंचायत राज के आरम्भ का श्रेय भारतवर्ष को ही है। भारत में इन संस्थाओं का संगठन एक वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन तथा अनुसंधान का फल था। ये ग्राम सभाएँ क्षेत्रों में संगठित थीं और क्षेत्रमण्डलों में ग्रंथित थे और समस्त देश इसी प्रकार से एक सूत्र में बँधा हुआ था।

पंचायतों की इस परम्परा का विश्व इतिहास बड़ा मनोरंजक है। इंगलिस्तान के प्रारम्भिक एंगल, सैक्सन तथा जूट कबीलों की पृष्ठभूमि ट्यूटॉनिक है। वे भी शुरू में ग्राम संस्थाएँ थीं और कबीले के वयोवृद्ध व्यक्ति द्वारा शासित होती थीं। परन्तु सैनिक सत्ता आने से वही वयोवृद्ध व्यक्ति इतना शक्तिशाली हो गया कि उसने दैवी शक्ति समान समझी जाने-वाली बादशाह की संस्था को जन्म दिया जिससे मौलिक ग्राम्य लोकतन्त्री संस्था का अन्त हो गया। प्रिंस क्रोपाटकिन ने अपनी पुस्तक “पारस्परिक सहायता” (म्यूचुअल एड) में यूरोप की इस प्रकार की अर्ध-स्वतन्त्र ग्राम्य इकाईयों का विवरण दिया है। इस प्रकार की संस्थाएँ वस्तुतः विश्व के हर भाग में थीं।

परन्तु यह एक ध्रुव सत्य है कि अन्य देशों में सभ्यता के आगे बढ़ने के साथ-साथ एकतांत्रिक शासन भी पनपता गया और ग्राम्य इकाईयों की सत्ता हीन हो गई। यह श्रेय भारत को ही है कि ग्रामों के इस मौलिक संगठन से संगठित शासन-क्रम शताब्दियों तक चलता रहा। महाभारत के काल तक सभा का महत्त्व रहा और गुप्त काल में इसका फिर से विकास हुआ। दक्षिण भारत में तो अंगरेजी शासन आने तक राजा के निर्वाचन की पद्धति पर अमल होता रहा। “मालाबार गजेटीयर” में नामर जाति के संघों का जिक्र करते हुए लिखा है—“ये संघ प्रजा की प्राचीन प्रथाओं और सनातन अधिकारों की रक्षा करते थे। यही नहीं, ये राजा के नियुक्त किये हुए मन्त्रियों को अनुचित कार्यों के लिए दण्ड भी देते थे और देश की पालमिण्ट के समान थे।”

प्रस्तुत पुस्तक में भारत की इस पंचायती परम्परा को तो सामने रखा ही गया है, साथ-ही-साथ भारत तथा संसार की वर्तमान परिस्थितियों में पंचायतों के स्थान को सामने रखने का भी प्रयास किया गया है।

: १ :

भारत की पंचायती परम्परा

प्राचीन भारत में पंचायतें

हम देख चुके हैं कि भारत में ग्रामराज की प्रथा का किस प्रकार उदय और विकास हुआ। ग्राम-राज्य का यह संगठन और ग्रामों की यह स्वतन्त्रता समय के साथ-साथ और अधिक पनपती और विकसित होती गई। रामायण में इनका वर्णन जनपदों के नाम से आता है। महाभारत-काल में भी इन संस्थाओं को पूरी स्वायत्तता प्राप्त थी। वैदिककालीन तथा उत्तर-वैदिककालीन इतिहास के अवलोकन से यह बात स्पष्ट हो गई है कि प्राचीन भारत का प्रत्येक ग्राम एक छोटा-सा स्वायत्त राज्य था। इस प्रकार के कई छोटे-छोटे गाँवों के छोटे-छोटे प्रादेशिक संघ मिल-भर बड़े संघ बन जाते थे। संघ पूर्णतः स्वावलम्बी थे तथा एक-दूसरे से बड़ी अच्छी तरह जुड़े हुए तथा संबधित थे। वास्तव में उनका संगठन इतना मजबूत था कि उसने एक सुदृढ़ दुर्ग की भाँति विदेशी आक्रमणों से हमारे देश की संस्कृति की रक्षा की। आक्रमणकारियों के रेले-के-रेले हमारे देश पर आते रहे, कई विदेशी जातियाँ यहीं बस भी गईं, पर हमारे ग्राम-संगठन, हमारी संस्कृति और हमारी परम्परा पर उनका कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा।

देश के क्रमिक इतिहास के अभाव के कारण इनके

विकास का क्रमबद्ध वृत्तान्त नहीं मिल नहीं पाता । परन्तु बौद्ध काल के संघों की कार्य पद्धति का जो वर्णन मिलता है उस पर ग्रामराज की प्रथाओं की स्पष्ट छाप है । इन संघों की कार्य पद्धति का वर्णन करते हुए हैबेल लिखता है—

“इन संघों की बैठकों में सदस्य पदानुसार निश्चित जगहों पर बैठते थे । इन स्थानों का निर्धारण आसन प्रज्ञापक किया करता था । प्रधान इस घोषणा से कार्यारंभ करता—‘आदरणीय संघ मुझे श्रवण करे और यदि संघ को समयोचित प्रतीत हो तो कार्य भी करे—संघ के आगे यह प्रस्ताव है’ । प्रस्ताव पढ़े जाने के पश्चात् प्रस्तावक उसका आशय समझाता था । जिन्हें प्रस्ताव से विरोध होता था वे बहस करते और अपनी बात रखते थे । फिर प्रधान पूछता था कि क्या प्रस्ताव स्वीकार है । तीन बार ऐसा करने पर यदि कोई विरोध न होता तो प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता था, अन्यथा मत लिये जाते । निर्णय बहुमत से होता था । परन्तु यह आधुनिक समय का बहुमतवाद नहीं था । बौद्ध संघ तथा आर्यों की सभा पर अलिखित परन्तु परम्परागत नियमों और प्रथाओं का बड़ा प्रभाव था । जब धर्म के विषय पर कोई विवाद होता तो धर्मसंघ के वृहत् अधिवेशन का निर्णय मान्य होता था । वृहत् अधिवेशन का बुलाया जाना बहुत महत्वपूर्ण घटना होती थी । वैशाली तथा राजगृह के ऐसे अधिवेशनों का वर्णन बौद्ध ग्रंथों में मिलता है । संघ की साधारण बैठकों में मत-निर्णायक अथवा मध्यस्थ निर्णायक भी चुन लिया जाता था जिसका निर्वाचन उसके न्याय, ज्ञान तथा सदाचार के गुणों पर निर्भर होता था । यह हरेक निर्णय पर दिये मतों की भली प्रकार

जाँच करता था और ऐसे निर्णयों को अवैध घोषित करता जो धर्म विरुद्ध होते। इस प्रकार भारत की शासन पद्धति मध्यस्थ-निर्णय तथा बहुमत का मध्यवर्ती मार्ग था।”

बौद्ध संघों के शासन की प्रणाली वस्तुतः भारत की ग्राम पंचायतों तथा ग्राम संघों से ही ली गई थी। भारत पर सिकन्दर महान् तथा अन्य यूनानी आक्रमणकारियों द्वारा निर्मित यूनानी स्मारकों से भी इस बात का पूर्णरूपेण समर्थन होता है कि ग्रामों के पंचायती संगठन पूर्णतया पुष्ट थे और ग्रामों की इकाइयों को पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त थी।

मौर्यकाल में भी ग्राम-इकाइयों की स्वायत्तता प्राप्त थी। तथापि हैबेल के कथनानुसार चाणक्य (कौटिल्य) इन स्वतंत्र तथा पृथक् छोटी-छोटी इकाइयों को देश की राजनैतिक सत्ता के ह्रास का कारण मानता था। यह ठीक है कि उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक “अर्थशास्त्र” में इनका कोई वर्णन नहीं किया है, पर चन्द्रगुप्त के दरबार में रहनेवाले यूनानी राजदूत मैगस्थनीज के वृत्तांत से उनके बारे में काफी सामग्री मिलती है। मैगस्थनीज के वृत्तांत से उस समय के नगर-प्रशासन तथा ग्राम प्रशासन पर खासा प्रकाश पड़ता है। नगरों का प्रशासन भी पंचायती प्रणाली से ही होता था, और तत्कालीन पाटलीपुत्र का प्रशासन उसकी सफलता का सूचक है।

मैगस्थनीज के अनुसार नगर प्रशासन भी ग्राम-शासन की भाँति ही होता था। नगर का शासन एक निर्वाचित संस्था के हाथ में होता था जिसमें ३० सदस्य होते थे। सदस्य छह समितियों में विभक्त होते थे। प्रत्येक समिति अलग-अलग विषयों का

प्रबंध करती थी। कुछ विषय अवश्य ऐसे थे जो सीधे राजकीय नियंत्रण में होते थे। पहली समिति उद्योगों का प्रबंध करती थी। दूसरी यात्रियों (विदेशियों) की देख-रेख करती थी तथा उनके आवास, भोजन, औपचारिक सहायता आदि का प्रबंध करती थी। यह समिति उनके रहन-सहन का भी ध्यान रखती थी और वापसी के समय आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता भी करती थी। विदेशी यात्री की मृत्यु ही जाने पर यह समिति उसकी सम्पत्ति को उसके घर तक पहुँचाने तथा अंतिम क्रिया आदि का भी प्रबंध करती थी। तीसरी समिति जन्म-मरण के आंकड़े रखती थी। चौथी का कार्य व्यापार की देख-भाल तथा निरीक्षण था। इस समिति के सदस्य नाप-तौल के बाटों की भी देखभाल करते थे और इस बात का ध्यान रखते थे कि उत्पादन खुले बाजार में बिके। पांचवीं समिति वस्तुओं के निर्माण का प्रबंध, निरीक्षण तथा देखभाल करती थी। यह समिति इस बात पर भी ध्यान रखती थी कि नई तथा पुरानी वस्तुएँ अलग-अलग बेची जावें। छठी समिति वस्तुओं के विक्रय मूल्य का दशांश शुल्क की तरह एकत्रित करती थी।

इसी प्रकार कृषि तथा पशु वंशोन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। न्याय का क्रम इस प्रकार था कि प्राथमिक न्याय के अधिकार पंचायतों को होते थे। उसके बाद न्यायाधीशों के पास वाद जाते थे। हर न्यायालय में तीन न्यायाधीश होते थे। अपील छह न्यायाधीश सुनते थे।

आदर्शग्राम संगठन के बारे में चाणक्य ने अपने “अर्थशास्त्र” में लिखा है कि ग्राम में सौ से लेकर पाँच-सौ तक कृषि-

व्यवसाय में रत परिवार होने चाहिए। ग्राम की जमीन एक-दो कोस तक होनी चाहिए। जमीन का बँटवारा पहाड़ों तथा वनों के अनुपात से ही होना चाहिए। हर आठसौ ग्रामों के संगठन के लिए एक स्थानीय दुर्ग निर्मित होना चाहिए, चारसौ ग्रामों के लिए एक द्रोणामुख। सौ ग्रामों के लिए एक खारवाटिक तथा १० ग्रामों के लिए एक संग्रहण। कृषि-भूमि कर पर कृषक को केवल उसके जीवन-काल के लिए ही दी जानी चाहिए और जो भूमि कृषि-योग्य नहीं हो और किसान उसको कृषि-योग्य बनाये तो वह भूमि उससे छीनी नहीं जानी चाहिए। यदि कोई अपनी भूमि ठीक तौर पर काश्त नहीं करता या उसे बंजर छोड़े रखता है तो वह उससे छीनकर काश्त के लिए अन्य कृषकों को दे दी जानी चाहिए।

वास्तव में चाणक्य की धारणा का यह आदर्श ग्राम-संगठन गुप्त साम्राज्य में ही अधिक फलीभूत हुआ। चीनी यात्री फाह्यान तत्कालीन ग्राम्य संगठन से बहुत प्रभावित हुआ था। अपने वृत्तान्त में वह लिखता है—“ग्रामों का संगठन आर्थिक तथा रक्षात्मक स्वावलंबन के विचारों पर आधारित होता है। यह ग्राम-राज्य का ही प्रत्यक्ष फल है। वे लोग स्वेच्छा से बन्धुता के नियमों का पालन करते हैं और बड़े शान्तिप्रिय तथा उन्नति-शील हैं।”

ग्रामों में न्याय भी ग्राम-पंचायतों के द्वारा ही हुआ करता था। ग्राम-न्याय-पंचायतें छोटे-छोटे मुकदमों के फैसले किया करती थीं। इनके ऊपर अन्य न्यायालय हुआ करते थे जिनमें देश के उच्चकोटि के न्यायाधीश बैठते और अपनी कचहरी जिलों

तथा मण्डलों के मुख्य स्थानों पर किया करते थे। गोप (ग्रामपति) अपने ग्राम के वासियों का रजिस्टर रखता था जिसमें गाँव की भूमि, आय, पशुधन तथा दातव्य कर और वहाँ के जन्म, मृत्यु आदि के आंकड़े होते थे।

भारत के प्राचीन पंचायती जीवन के बारे में आधुनिक साम्यवादी विचारधारा के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स ने अपनी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक “पूँजी” (कैपीटल) में लिखा है, “पुरातनकाल से चले जानेवाले ये नन्हें-नन्हें भारतीय ग्राम-समुदाय धार्मिक ढंग की सांझी मिलकियत तथा किसान और मजदूर के श्रम-विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित हैं। ये ग्राम समुदाय अपने-आप में परिपूर्ण तथा आत्म-निर्भर हैं। इनके उत्पादन-क्षेत्र का विस्तार सैकड़ों से लेकर हजारों एकड़ों तक पहुँचता है। अधिकतर उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है जो ग्रामवासियों की आवश्यकता की पूर्ति करती हों। केवल उत्पादन के लिए ही उत्पादन नहीं किया जाता। इससे श्रम-विभाजन में जो बुराई है उससे ये संस्थाएँ बची हुई हैं परन्तु कहीं-कहीं भारतीय समाज में भी यह रोग प्रविष्ट हो रहा है। भारत के विभिन्न विभागों में, आवश्यकता के अनुसार विभिन्न प्रकार के ग्राम-समुदाय पाये जाते हैं। भूमि संयुक्त रूप में काश्त की जाती है और उपज प्रत्येक परिवार में बाँट दी जाती है। इसके अतिरिक्त लोग सहायक धंधे के रूप में कताई-बुनाई का कार्य भी करते रहते हैं। एशिया के समाज में जो सुदृढ़ता, संगठन तथा स्थायित्व पाया जाता है, उसका मुख्य श्रेय इन स्वावलम्बी ग्राम-समुदायों की उत्पादन-प्रणाली को ही है। वहाँ के राज्य टूटते रहे हैं, शाही खानदान बनते-बिगड़ते और

मिटते रहते हैं परन्तु वहाँ के ग्राम के समाज समुदाय पर इन तूफानों, आँधियों, क्रान्तियों तथा परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे अपनी उसी सनातन गति से चलते रहते हैं।”

उस समय का सामाजिक जीवन भी बड़ा मनोरंजक तथा आकर्षक था। ग्राम के जीवन में वहाँ के मन्दिर का बड़ा महत्वपूर्ण भाग होता था। सभी मेले तथा उत्सव मन्दिर के आस-पास ही होते थे। ये मेले साल-के-साल लगते थे और इनमें विभिन्न जातियों के लोग परस्पर निकट सम्पर्क में आते तथा उनका परस्पर आदान-प्रदान होता था। ये मेले उस समय यूरोप के देशों में होनेवाली प्रदर्शनियों का ही प्रतिरूप थे। गाँव के जीवन में पर्यटक, गायक तथा नाटक और रामलीला मण्डलियां मनोरंजन तथा आकर्षण उत्पन्न करती थीं। इनके अतिरिक्त भाट तथा माँगकर खानेवाले गायक गा-बजाकर गाँव में एक नवजीवन पैदा कर देते थे। यह भोले-भाले ग्रामीणों के जीवन को सुन्दर तथा सौम्य बना देते थे। रामायण तथा महाभारत की कथा को गा-बजाकर सुनाने वाले कथावाचक एक नया ही समां बांधते थे। रामायण और महाभारत के पात्रों ने भारत के ग्रामीणों के हृदय तथा मस्तिष्क को बनाने व संजोने में बड़ा भारी योग दिया है। ग्रामीण सरलता, सहृदयता तथा अतिथि-सत्कार का जो एक आदर्श रूप हम भारत के ग्रामों में पाते हैं इसका बहुत सारा श्रेय इन्हीं पात्रों को है।

ग्राम्य-जीवन की सबसे महत्वपूर्ण वस्तु वहाँ की पंचायत या ग्राम-सभा हुआ करती थी। पंचायत का साधारण अर्थ तो है पाँच पंचों की सभा, परन्तु गणित का यह प्रतिबन्ध उन प्राचीन

पंचायतों पर लागू नहीं होता था जिनमें अक्सर पाँच से अधिक पंच भी होते थे। पंचायत ग्राम पर सर्वरूपेण शासन करती थी। ऐसा कहा जाता है कि यह पंचायत-प्रणाली भारत में आर्यों के आक्रमण से पूर्व भी प्रचलित थी। हिन्दू धर्म-शास्त्र पंचायतों के उद्धरणों से भरे पड़े हैं। महर्षि वाल्मीकि की रामायण में जनपदों का वर्णन आता है जो पंचायतों का ही नाम है। हम देख चुके हैं कि सिकन्दर महान् के आक्रमण के समय भी पंचायतें भारत में अपना कार्य कर रही थीं। भारत के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री तथा कूटनीतिज्ञ, आचार्य विष्णुगुप्त (चाणक्य) के अर्थशास्त्र में भी पंचायतों का वर्णन मिलता है। प्रसिद्ध यूनानी विद्वान मैगेस्थनीज ने भी भारत में पंचायतों का उल्लेख किया है। उस समय पंचायतें बड़े महत्त्व के कार्य करती थीं और पंचायतें ग्राम्य-जीवन का ही नहीं अपितु समस्त भारतीय जीवन का आवश्यक अंग बन चुकी थीं। बांधों का बाँधना, सड़कें बनाना, विश्रामगृह व तालाब बनाना, स्कूलों तथा मन्दिरों का निर्माण करना, अच्छे बीजों का संग्रह तथा ग्रामीणों में वितरण और ग्रामीणों को आर्थिक सहायता देने के लिए धन-निधियों की स्थापना आदि सभी कार्य पंचायतों द्वारा किये जाते थे।

केंद्रीय सरकार समय-समय पर इन पंचायतों की धन से सहायता करती रहती थी। वह उनके कार्यक्षेत्र को और अधिकार देकर विस्तृत करती थी। पंचायत खुद विभिन्न कामों के लिए विभिन्न समितियों में विभाजित होकर काम किया करती थीं। इन समितियों में स्त्रियाँ भी होती थीं। इन समितियों का सदस्य बनने के लिए यह आवश्यक था कि सदस्य निज निर्मित मकान में

रहता हो, उसके पास भूमि हो जिसका वह कर देता हो और उसकी आयु ३५ तथा ७० के बीच में ही हो। यदि वह शास्त्र-वेत्ता होता तो भूमि तथा सम्पत्ति-संबंधी शर्त हटा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त सदस्य के लिए यह भी जरूरी था कि वह समिति के कार्यक्रम तथा उसकी प्रक्रिया से भलीभाँति परिचित हो और पिछले तीन वर्षों में किसी समिति का सदस्य न रह चुका हो। पहले समिति के हिसाब-किताब में गड़बड़ी करनेवाले तथा किसी अपराधिक अपराध में सजा भुगतनेवाले व्यक्तियों को समिति में नहीं लिया जाता था। पंचायतों का निर्णय रस्मी ढंग से हाथ खड़े करके बहुमत के प्रदर्शनमात्र से ही नहीं होता था अपितु पारस्परिक विचार-विमर्श, तालमेल तथा सूझ-बूझ के पश्चात् सर्व-सम्मति से होता था। इस कारण उस समय की सभाएँ दलबन्दी के रोग से मुक्त थीं। सर हर्बर्ट रिजले ने इस प्रथा का वर्णन करते हुए लिखा है, “लोग एक प्रश्न को लेकर बुद्धिमत्ता से उस पर सोचते, उसपर विचार-विनिमय करते और उससे सम्बन्धित बातों पर सर्वांगरूपेण टीका-टिप्पणी करने के उपरान्त वे किसी एक निश्चयात्मक निर्णय पर पहुँचते थे। वहाँ बहुमत का कोई प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता था क्योंकि वे सब एकमत होते थे। वहाँ अल्पमत भी नहीं था क्योंकि उन सबको शंकाओं का पूर्णरूपेण समाधान कर दिया जाता था और उनको एकमत बना लिया जाता था।”

पंचायतें दण्डस्वरूप किसी को कारावास में नहीं डाल सकती थीं और न ही गाँव में जेलें होती थीं। पंचायतों का सबसे कड़ा दण्ड सारे ग्राम से तिरस्कृत किया जाना समझा जाता था।

और जो व्यक्ति पंचायतों के निर्णय को नहीं मानता था उसको ग्रामद्रोही समझा जाता था। समाज से उसका संबंध-विच्छेद कर दिया जाता था और उसके साथ कोई भी व्यक्ति रोटी-बेटी का संबंध नहीं रखता था। उसको एक प्रकार से अछूत माना जाता था। परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम देखने में आते हैं जबकि ऐसा करने की आवश्यकता पड़ी हो। साधारणतः लोग सामाजिक कर्तव्यों के प्रति बड़े जागरूक होते थे और उनमें अनुशासन के प्रति मान तथा प्रतिष्ठा थी।

पंचायतों का चुनाव प्रायः वयस्क-मतदान के सिद्धान्त के अनुसार ही होता था, परन्तु कहीं-कहीं सदस्य मनोनीत भी किये जाते थे।

प्रत्येक गाँव को चुनाव के लिए ३० विभागों में बाँट लिया जाता था और प्रत्येक विभाग के लोग अपने-अपने वोट डालते थे। इन पर्चियों को बंडल के रूप में बना लिया जाता और एक तीन साल के बच्चे से उनमें से तीन पर्चियाँ निकलवाई जाती थीं। उन पर्चियों में जिन-जिनके नाम हों उनको ही ग्राम-पुरोहित पंचायत का सदस्य घोषित कर देता था।

पंचायत ग्राम की आधारशिला होती थी। इसके द्वारा ही ग्राम का विधान बनता तथा उसकी उन्नति होती थी। ग्राम्यजीवन का कोई भी अंग पंचायत के कार्यक्रम से अछूता नहीं रहता था। ग्राम की सफाई तथा जनहित-संबंधी कार्यों की ओर पंचायत मुख्यतः ध्यान देती थी। उस समय की पंचायतें खेती की उपज बढ़ाने के लिए सिंचाई के साधनों का विस्तार करने का खास प्रयत्न करती थीं। हाल में ही एक लेख मिला है जिससे पता चला है कि दक्षिण

में, अहिरल ग्राम के सभासद चेयेरू नामक नदी के तट पर स्थित परशुरामेश्वर मंदिर में एकत्रित हुए और उन्होंने निश्चय किया कि मन्दिर को नदी की बाढ़ के उत्पात से बचाने के लिए पंचायत द्वारा यहाँपर एक बाँध बनवाया जाय। इसी प्रकार मैसूर के एक ग्राम में स्थानीय सभा द्वारा तालाब की ठीक रक्षा तथा देख-भाल के लिए एक व्यक्ति के नियुक्त किये जाने के बारे में वर्णन भी मिलता है। चिंगलपट जिले के उत्तर में भल्लर स्थान से प्राप्त दशवीं शताब्दी के दो शिलालेखों में ग्राम-सभाओं के संविधान तथा सभासदों के चुनने का सविस्तार वर्णन है।

जनहित कार्यों में धनिक व्यक्ति तथा जन-सेवा में रुचि रखनेवाले सभी लोग योग दिया करते थे। दान दिये गये धन का भी पंचायत ही प्रबन्ध किया करती थी। निर्धन श्रमदान देकर पंचायतों के काम में सहयोग देते थे।

प्राचीन भारत का ग्राम्य-जीवन सरल, सहज और समान था। अपने में परिपूर्ण होने के कारण वह लोगों की आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं की भलीभाँति पूर्ति करता था। प्रसिद्ध पर्यटक ट्रेवर्नियर ने अपनी १७वीं सदी की भारत-यात्रा में लिखा है—“प्रत्येक ग्राम में मैदा, मक्खन, दूध, साग-सब्जियाँ, खांड तथा मिठाइयाँ प्रचुर मात्रा में मिल जाती हैं, जो ग्रामों की सुख और समृद्धि की परिचायक हैं।” वह आगे लिखता है—“ग्रामों की एकता तथा सहयोग की भावना प्रशंसनीय है। प्रत्येक ग्राम अपने में एक छोटा-सा संसार है। बाहर की घटनाओं का ग्राम्य-जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। ग्राम-निवासी अपने बल और भगवान् पर विश्वास रखते हुए

अपने कामों में जुटे रहते हैं। भारत के ग्राम एक बड़े परिवार के समान हैं जिनका हर एक सदस्य अपने कर्तव्यों से भली प्रकार परिचित है।”

ग्रामों के इन संगठनों की सफलता का रहस्य केवल यह था कि ग्रामीण अपने अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों की अधिक चिन्ता करते थे। इस तरह भारत के ग्रामों के संगठनों की परम्परा भारत में उत्पन्न हुई, पनपी और इसने दीर्घकाल तक सफलता से देश के ग्रामीणों को समृद्ध, सुसम्पन्न तथा आत्मनिर्भर रखा। पंचायतों के कारण ही काफी समय तक विदेशी देश पर अपना आर्थिक प्रभुत्व जमाने में असमर्थ रहे।

मध्यकालीन भारत में पंचायतें

यूँ तो भारत पर समय-समय पर अनेक विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमण होते रहे, पर सिंध पर मुहम्मद-बिन-कासिम के आक्रमण के साथ भारत के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात होता है जिसे मध्यकाल कहा जाता है। मुहम्मद-बिन-कासिम भारत पर आक्रमण करनेवाला पहला मुस्लिम सेनानी था। इसके बाद भारत पर कई दूसरे मुस्लिम नेताओं के आक्रमण हुए।

भारत के मुस्लिम विजेताओं को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। एक श्रेणी में महमूद गज़नवी, तैमूर, नादिरशाह आदि आक्रमणकारी आते हैं; जिनका एकमात्र उद्देश्य लूटमार था और जो अपने आक्रमण और लूटने के चिह्न छोड़ वापस चले गए। इन्होंने न तो इस देश में रुकने की ही कोशिश की और न अपने प्रतिनिधि आदि छोड़ अपना शासनतंत्र यहाँ चलाने की चेष्टा ही

की। दूसरी श्रेणी के आक्रमणकारियों में कुतुबुद्दीन ऐबक और बाबर जैसे विजेता आते हैं जिन्होंने इस देश पर विजय प्राप्त करने के बाद यहींपर अपने साम्राज्य बनाये और खुद भी यहीं बस गये। दिल्ली का गौरवशाली मुस्लिम साम्राज्य इन्हीं विजेताओं द्वारा स्थापित किया गया था।

यह स्वाभाविक ही था कि पहली श्रेणी के मुस्लिम आक्रमणकारी, जिनका एकमात्र उद्देश्य इस देश के धन को ले जाना था, यहाँ की सामाजिक व राजनैतिक स्थिति पर कोई खास प्रभाव न डाल सके। पर हमें देखना यह है कि दूसरी श्रेणी के मुस्लिम विजेताओं ने, जिन्होंने भारत को अपना घर बना लिया था, इस देश की सामाजिक-राजनैतिक अवस्था पर क्या असर डाला।

यह ठीक है कि भारत के मुस्लिम विजेताओं का धर्म यहाँ की जनता के धर्म से भिन्न था और उनकी सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परम्परा भी दूसरी थी, पर भारत में उनके बस जाने के बाद यह भेद बहुत महत्वपूर्ण नहीं रहे। कालांतर में कई भारतीयों ने, विशेषकर निम्नजाति के व्यक्तियों ने, अपने शासकों का धर्म अपना लिया। हिन्दुओं और मुसलमानों के सामाजिक समागम से और उनकी सांस्कृतियों के मिलने से साहित्य, कला और संगीत, तीनों में नई धाराएँ आईं। जहाँतक देश की राजनैतिक व्यवस्था का प्रश्न है, मुस्लिम शासकों ने उसके मूल को बदलने की कोई चेष्टा नहीं की। पंचायती संगठन को कोई खास ठेस नहीं पहुँची। अक्सर शासकों ने पंचायतों के क्षेत्र तथा अधिकार आदि में कोई वृद्धि नहीं की और न ही उन्हें कम करने की चेष्टा की। बल्कि सत्य तो यह है कि शासन ने

अपने हितों में पंचायतों का काफी उपयोग किया। अतः देश की पंचायत-प्रणाली पहले की तरह ही चलती रही और ग्रामों का संगठन भी पहले जैसा ही रहा है। इतिहासकार वैवेल लिखता है—
 “मुस्लिम सुल्तानों ने भारत की परम्परागत ग्राम-संस्थाओं का उपयोग करना ही उचित समझा।”

मुगलकाल में भी देश की पंचायती व्यवस्था पहले की तरह ही चलती रही। शासकों ने पंचायतों की महत्ता को स्वीकार किया और पंचायतों को आर्थिक सहायता भी दी। इस काल में पंचायतों की स्वायत्त-सत्ता भी बढ़ी। १६५१ में दिल्ली के पास एक गाँव में श्री काबुलसिंह नामक सज्जन से एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई है जिसमें सम्राट् अकबर के समय की पंचायती व्यवस्था का एक निश्चित तथा क्रमिक विवरण है। इस पाण्डुलिपि से पता चलता है कि उस काल में भी पंचायतें पूर्ववत् काम कर रही थीं। ग्राम-सम्बन्धी सारा कार्य पंचायतें ही करती थीं और शासन उनके महत्व को पूर्णतः स्वीकार करता था।

यह बात ठीक हो सकती है कि भारत के मुस्लिम शासकों ने पंचायतों को इस्लाम के प्रचार और करों की वसूली में भी उपयोगी समझा हो और उनका उपयोग किया भी हो। “आइने अकबरी” में दी गई हिदायतों से यह बात सिद्ध होती है कि मुस्लिम-काल में भी शासन द्वारा देश की पंचायती परम्परा का यथासम्भव संरक्षण किया गया था।

सन् १८१२ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारतीय ग्रामों के अध्ययन के लिए नियुक्त की गई गुप्त समिति ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है—“इस देश में आदि काल से सादे ढंग का

स्थानीय शासन प्रचलित है। लोगों ने एक राजा के आने या दूसरे के चले जाने को कभी अनुभव नहीं किया। राज्य बने और टूटे, पर ग्रामवासियों ने अपने इस स्वायत्त शासन में कोई अवरोध नहीं पाया। ग्राम उसी प्राचीन रूप से सुदृढ़ तथा संगठित रहे। उनके अधिकार सुरक्षित रहे और सदियों की तब्दीलियाँ उनको कोई हानि नहीं पहुँचा सकीं।” सर चार्ल्स ट्रेवलियन ने भी इस कथन का समर्थन किया है।

भारत में पंचायतों का वर्णन करते हुए सर चार्ल्स मैटकाफ ने लिखा है—“एक राजपरिवार के बाद दूसरे राजपरिवार का पतन हुआ, एक विप्लव के बाद दूसरा विप्लव आया, हिन्दू, पठान, मुगल, मराठा, सिख तथा अंग्रेज एक के बाद एक इस देश के शासक बने, परन्तु ग्राम्य संस्थाओं में कोई अन्तर नहीं आया। आपत्ति के समय में वे अपने आपको शस्त्रों से सुसज्जित करते, गांव की किलाबंदी कर लेते, अपनी धनसम्पत्ति को गढ़ के अन्दर कर लेते और आक्रमणकारियों की सेनाएं चुपचाप वहाँ से गुजर जातीं। भारतीय ग्रामों की यह इकाइयाँ ही वास्तव में उन्हें उन परिवर्तनों तथा क्रांतियों से बचा सकी हैं जो कि समय-समय पर यहां आते रहे हैं। इस देश के सुख, शान्ति समृद्धि और स्वतंत्रता का अधिकतर श्रेय इन्हीं पंचायतों को ही है।”

पंचायतों के इस संगठन के संबंध में “इम्पीरियल गजेटियर” में यह कहा गया है—“भारतीय ‘आदर्श ग्राम’ बस्ती के मध्य में स्थित घरों का एक झुमट होता है। इसके साथ ही एक खूली जगह होती है जिसमें पशुओं का बाड़ा या

अनाज को सुरक्षित रखने के छप्पर होते हैं। आसपास चारों ओर खेत-ही-खेत होते हैं या जंगल जो गांववालों के लिए बाड़ी, पशुओं के चारे, ईंधन तथा इमारती लकड़ी आदि जीव-नोपयोगी वस्तुओं के काम आते हैं। खेतों की मेड़, सिंचाई के लिए पानी की नहरों व कूहले तथा पानी के बहाव को रोकने वाले छोटे-छोटे बांध हृदबन्दी का काम देते हैं। इनसे गांव की भूमि कई खण्डों तथा उपखण्डों में बंट जाती है। इस प्रकार के स्वच्छ, सुन्दर, स्वतंत्र, मुग्ध तथा सरल वातावरण में गांव के निवासी जन्म से मृत्यु तक रहते हैं और गांव का यह भोला वातावरण उनके जीवन का एक अंग बन जाता है। सारे गांव के लोग अपने आपको एक बड़े कुटुम्ब का सदस्य समझते हैं और एक संयुक्त परिवार की भांति जीवनयापन करते हैं। उनमें धनी-निर्धन, ऊँच-नीच तथा छोटे-बड़े की अस्वस्थकारी भावना लेश मात्र भी नहीं है।”.....“गाँव में सुख, शान्ति तथा व्यवस्था बनाये रखने के लिए एक अलग आयोजित संगठन होता था। इसका आयोजन ग्राम की आवश्यकताओं के अनुसार होता था। परन्तु इसका कार्यभार संभालनेवाले सदस्य प्रायः सब ग्रामों में एक जैसे ही होते थे—मुखिया, कायस्थ, चौकीदार, हृदबंधक, तालाबों तथा नहरों का अधीक्षक, पुजारी, ज्योतिषी, लुहार, सुनार, कुम्हार, ठठेरा, तरखान, धोबी, नाई, ग्वाला, वैद्य, कवि, गायक तथा नर्तकी। मुखिया ग्राम के सभी कार्यों की अध्यक्षता करता था। अन्य कर्तव्यों के अतिरिक्त ग्राम में कर आदि एकत्रित करना भी उसका काम था। कायस्थ ग्राम की उपज का हिसाब-किताब रखता था तथा इससे सम्बन्धित जरूरी कागज-पत्रों को संभाल कर रखता था।

चौकीदार अपराधों तथा अपराधियों की सूचना प्राप्त करता था । यात्रियों की सुरक्षा का भार तथा खेतीबाड़ी की रखवाली का काम भी उसी के सुपुर्द था । हदबन्धक हदबन्दी को सुरक्षित रखता था और हदबन्दी के भग्गड़ों में गवाही देता था । नहरों तथा तालाबों का अधीक्षक खेती-बाड़ी के लिए पानी के बँटवारे का काम करता था । पुजारी धर्मस्थानों पर धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न करता था और ज्योतिषी कटाई-जुताई के शुभमुहूर्त बताता था । लोहार तथा बढ़ई खेती-बाड़ी के औजार तथा इमारती सामान बनाते थे । मुखिया, कायस्थ और चौकीदार ग्राम के महत्वशाली तथा आवश्यक अंग थे और ये जनता के सही रूप में सेवक समझे जाते थे । मुखिया की बड़ी हैसियत थी और यह पद उसी व्यक्ति को दिया था जो कि सारे गाँव की मान-प्रतिष्ठा का पात्र हो । मुखिया को कोई वेतन नहीं मिलता था । मुखिया ग्रामीणों में से ही चुना जाता था और जनता का विश्वास खत्म हो जाने पर उसे हटा दिया जाता था । इसका चुनाव बहुमत से न होकर सर्वसम्मति से होता था । मुखिया का कार्यक्षेत्र बड़ा विशाल तथा विस्तृत था । छोटे-मोटे मामलों को वह स्वयं अपनी स्वेच्छा से निपटा देता था, परन्तु महत्व के प्रश्न पंचायतों को भेज दिये जाते थे । गाँव के इन सब कर्मचारियों को वेतन अनाज रूप में ही दिया जाता था ।”

अंग्रेजी शासन-काल में पंचायतें

मुगल शासनकाल में यूरोप के कई देशों के व्यापारी भारत आये और तत्कालीन मुगल-सम्राटों की आज्ञा से उन्होंने भारत में जगह-जगह पर अपनी व्यापारिक कोठियां स्थापित कर लीं । भारत

का वैभव उस समय अपने चरम पर था। देश से अनेक पदार्थों का निर्यात होता था, जिनमें कपड़े और नील का स्थान सबसे ऊँचा था। तत्कालीन यूरोपीय ललनाएँ भारत के कपड़े के लिए लालायित रहती थीं। देश वैसे भी धन-धान्य से परिपूर्ण था, जनता समृद्ध और खुशहाल थी और कला-कौशल तथा दस्तकारी खूब विकसित थी।

मुगल राजवंश के पतन के साथ देश में अव्यवस्था छा गई। इस उथल-पुथल का इन विदेशी व्यापारियों ने पूरा-पूरा फायदा उठाया और अपने-अपने देश का प्रभुत्व स्थापित करने के लिए देश के मामलों में खुलकर हस्तक्षेप किया। धीरे-धीरे और विदेशी कम्पनियों ने मैदान छोड़ दिया और दो कम्पनियों में खुली होड़ शुरू हो गई। यह कम्पनियाँ थीं—अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी और फ्रांस की व्यापारिक कम्पनी। अगले १०० सालों में फ्रांसीसी कम्पनी भी लगभग समाप्त हो गई और देश का अधिकांश भाग अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रभुत्व में आ गया। इसके बाद से १५ अगस्त १९४७ तक घटना-क्रम अधिकांश पाठकों को ज्ञात है। हम इस काल में पंचायतों के विवरण तक ही अपने को सीमित रखेंगे।

हम कह चुके हैं कि मुगल शासनकाल में देश की पंचायती व्यवस्था बरकरार जारी रही। देश में अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित होने के समय भी काफी हद तक यही बात थी। किंतु भारतीय ग्रामों का स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर तथा स्वायत्त शासन अंग्रेजी कम्पनी की योजनाओं में बाधक था। उस समय इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति हो चुकी थी और मैनचेस्टर, लंकाशायर

तथा लीड्स आदि नगरों में कपड़े, लोहे और ऊन के बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हो चुके थे। ऊँची-से-ऊँची रुकावटों के बावजूद भारतीय माल इंग्लैण्ड के बाजारों में बिकता था। इसको रोकने का, और अंग्रेजी कपड़े का भारत में रास्ता खोलने का एकमात्र उपाय था भारत में वस्त्र उद्योग ठप्प करना। पर भारत में तो इंग्लैण्ड की तरह बड़े-बड़े कारखाने थे नहीं। यहाँ का तो सारा वस्त्र-उद्योग यहाँ के ग्रामों में सीमित था। ग्रामों के सारे उद्योग-धंधे वहाँ की पंचायतों के नियंत्रण में आते थे। इसलिए इसका एकमात्र उपाय था पंचायती क्षेत्र में, और इस तरह से भारत के सारे ग्रामराज में, हस्तक्षेप करना। यह हस्तक्षेप कई तरह से किया गया। सबसे पहली शुरूआत नई भूमि व्यवस्था द्वारा की गई— देश के कई भागों में जमींदारी-प्रथा की शुरूआत की गई। यह व्यवस्था भारत के लिए एकदम नई थी और इसने पंचायतों के क्षेत्र में बहुत कमी कर दी। इसके बाद पंचायतों के क्षेत्र और अधिकारों में प्रशासन-तंत्र द्वारा रोक लगाई गई। पंचों को शासनिक कार्य में हस्तक्षेप करने से मना कर दिया। शासनिक कार्यों का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया कि उसमें पंचायतों का हर काम आ जाता था। तनिक-सी बात पर भी शासनिक कार्य में बाधा डालने के अपराध पर पंचों को दण्ड दे दिया जाता था। इन कड़े दण्डों से पंचायतों पर आतंक छा गया। धीरे-धीरे अधिकांश ग्राम-पंचायतें निष्क्रिय होगईं। पंचायतों की समाप्ति के साथ-साथ सदियों से चली आने वाली ग्रामीण-संगठन की व्यवस्था भी भंग हो गई। इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि गांवों की समृद्धि निर्धनता में बदल गई, स्वावलम्बी ग्राम परावलम्बी हो गये।

ग्राम्य-न्याय के अभाव में सरकारी कचहरियों और मुकदमेबाजी का चक्कर शुरू हो गया, और सारा पुराना ढाँचा ढह गया। कुछ ही वर्षों के अंग्रेजी शासन के बाद भारत का किसान घोर निर्धनता और दारिद्र्य का प्रतीक माना जाने लगा। आरनोल्ड लप्टन ने इस दीनता का वर्णन इन मार्मिक शब्दों में किया है—

“किसान का महल उसकी मिट्टी की भोंपड़ी है, जिसकी छत टूटी-फूटी लकड़ियों और ताड़ के पत्तों से बनी होती है। खाट, अगर हुई तो, मुड़ी-तुड़ी लकड़ियों की बनी होगी। उसपर पड़ा उसका बिस्तर—अगर हुआ तो—जमीन से कोई छह इंच ऊँचा होता है। घर में न दरवाजा होता है और न कोई खिड़की। चूल्हा घर के बाहर होता है। अवकाश के समय आराम करने का उसका ‘सोफा’ मिट्टी का चबूतरा होता है जो सोने की कोठरी के बाहर होता है। उसके पास एक ही कपड़ा होता है, जो उसकी जाँघों पर लिपटा होता है, और क्योंकि इसे धोते समय पहनने के लिए उसके पास कोई दूसरा कपड़ा नहीं होता, इसलिए यह कपड़ा कभी नहीं धुलता। वह न तम्बाखू पीता है, और न शराब। वह अखबार भी नहीं पढ़ता। किसी मनोरंजन में वह भाग नहीं लेता। उसका धर्म उसे नम्रता और संतोष की सोख देता है और वह संतोष से तबतक जीता है कि जबतक भूख उसे चिरनिद्रा में सुला नहीं देती।”

इस ग्रामीण निर्धनता तथा अज्ञान का एकमात्र कारण था इस ग्राम-राज्य की समाप्ति और वह भी नृशंसता के साथ। इससे ग्रामीणों की आत्म-विश्वास तथा स्वावलम्बन की भावनाएँ नष्ट हो गईं। इस विचार की पुष्टि करते हुए इतिहासकार

श्री रमेशचन्द्र दत्त ने एक स्थान पर लिखा है, “भारत में ब्रिटिश राज्य का सबसे अफसोसनाक फल यह हुआ कि उसने उस ग्राम राज्य की प्रथा को तहसनहस कर दिया जो विश्व के सब देशों से सर्वप्रथम भारत में विकसित हुई और सबसे अधिक काल तक पनपी।”

ब्रिटिश शासन में पंचायतों का पुनरुत्थान ?

हम कह चुके हैं कि अंगरेजी शासन का मुख्य उद्देश्य था भारत का शोषण; और इसी ध्येय से उन्होंने पंचायतों की समाप्ति भी की। ग्राम-पंचायतों के सर्वनाश के पश्चात् ग्राम में और कोई ऐसा तन्त्र नहीं रहा जिसके द्वारा शासन और ग्रामों का पारस्परिक संबंध सुदृढ़ होता। ग्रामीणों को शासन के प्रति कोई विश्वास कैसे हो सकता था जबकि शासन का ध्यान उनकी तरफ उसी समय जाता था कि जब वहां कोई भीषण घटना हो जाती। सन् १८०० से १८२५ तक पाँच अकाल पड़े और १८२५-५० तक दो और अकाल पड़े। १८५० से १८७५ तक ६ अकाल और १८७५ से १९०० तक १८ अकाल पड़े। जब कभी अकाल पड़ता तो लाखों दुधारे तथा कृषियोपयोगी पशु और मनुष्य भूखे मर जाते। सड़कें उनके शवों से पट जातीं। माताएँ बच्चों को मृत्यु की गोद में छोड़ जातीं। अकाल के पश्चात् वर्षों तक आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। बीमारी और मौत सिर पर मंडराती थी। इन लगातार आनेवाले संकटों से अस्त लोग कभी-कभी विद्रोह भी कर देते। सरकार द्वारा समय-समय पर नियुक्त अकाल जाँच-समितियों तथा कृषि जाँच-समितियों ने इस समस्या पर विचार करके पहला सुझाव यह दिया कि कृषकों को ऋण से मुक्त करने तथा उत्पादक ऋण प्राप्त करने के लिए सहकारी

संस्थाओं का संगठन किया जाय । यहाँ पर यह बताना भी आवश्यक है कि प्राचीनकाल की पंचायतें वस्तुतः आर्थिक तथा सामाजिक स्वराज की ग्राम-संस्थाएँ थीं और पंचायतों के पतन से ही सहयोग तथा सहकारिता की भावनाओं का भी लोप हो गया था । सन् १९०० में पहला सरकारी अधिनियम बना परन्तु इसके बनने से भी ग्राम-स्वावलम्बन की भावनाओं का पोषण न हो सका । अंगरेज शासकों ने यह अनुभव कर लिया था कि जबतक ग्रामीणों का सहयोग शासक को प्राप्त न होगा तबतक ग्रामीणों के कष्टों का निवारण सम्भव नहीं और विद्रोह की भावनाओं को दबाना भी कठिन रहेगा । परन्तु साथ ही उनको यह भी चिन्ता थी कि यदि ग्रामीण पुष्ट हो गये तो उनकी आर्थिक शोषण की नीति का सफल होना सम्भव नहीं । अतः वह ग्रामीणों का सहयोग एक सीमित मात्रा तक चाहते थे जिससे कि उनकी अपनी नीति सफल रहे और थोड़ी-सी शराब पिलाकर विद्रोह की अग्नि को भी शान्त तथा नियन्त्रित रखा जावे । इसी ध्येय से सन् १९०६ में शाही विकेन्द्रीकरण आयोग का निर्माण हुआ और उक्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट दी । वास्तव में यह रिपोर्ट स्थानिक स्वराज के पुनर्स्थापन का श्रीगणेश करती है । इस रिपोर्ट के ग्राम पंचायत सम्बन्धी अध्याय (३) का संक्षिप्त अनुवाद दिया जाना पाठकों के लिए लाभप्रद होगा ।

ग्राम्य-संगठन

भारत में एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक फैले हुए गाँव ही सरकार की सबसे छोटी इकाई हैं और इसी इकाई को आधार

मानकर आगे तहसील, तालुके और जिले बनाये गए हैं।

भारतीय गांव पास-पास सटे भोंपड़ों का एक भुण्ड होता है जिसमें साथ ही एक जोहड़ तथा पशुओं को बाँधने का एक स्थान होता है। गांव के चारों ओर फैले हुए उसके खेत होते हैं। इस भूमि में या तो खेती होती है या कुछ भाग गांव के पशुओं को चरने के लिए छोड़ दिया जाता है। गांव के लोग ऐसे सरल वातावरण में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इस छोटे-से समाज में निज-निर्मित विधि-विधानों से बंधे हुए कुछ सरकारी कर्मचारी, कुछ कारीगर और कुछ व्यापारी, सब भाईचारे का जीवन गुजारते हैं। यहाँ हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि कुछ स्थानों पर, जैसे आसाम, पश्चिमी बंगाल तथा मद्रास के पूर्वी घाट में, ऐसे ग्राम नहीं हैं। यहाँपर लोग अलग-सा घरेलू जीवन व्यतीत करते हैं।

उपरोक्त गाँवों को हम मुख्यतः दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम रैयतवारी ग्राम, जो उत्तर भारत को छोड़ कर अन्यतर मिलेंगे। ऐसे ग्रामों में काश्तकार से सीधे कर वसूल किया जाता है। गाँववालों का संयुक्त उत्तरदायित्व नहीं होता। हां, कुछ जमीन गांव के पशुओं के चरने के लिए शामलात में छोड़ी जा सकती है, परन्तु बंजर भूमि माल अधिकारी से आज्ञा लिए बिना और कर चुकाये बिना काश्त में नहीं लाई जा सकती। ग्राम का शासकीय प्रबंध वंशानुक्रम से चौधरी में निहित होता है। कहीं-कहीं उसको पटेल, मुखिया या रेड्डी भी कहा जाता है। गाँव से कर एकत्रित करना तथा वहाँ शान्ति व्यवस्था बनाये रखना उसीका कर्तव्य होता है। यह मुखिया पुराने समय के

कुनबे या गिरोह के उस वृद्ध-पुरुष का आज भी प्रतिनिधित्व करता है जिसने कभी गाँव बसाया होगा। दूसरी तरह के गाँव हैं तालुकेदारी या जमींदारी गाँव। ये गाँव संयुक्त प्रांत (वर्तमान उत्तर प्रदेश), पंजाब तथा सीमाप्रान्त में पाये जाते हैं। यहाँ लगान इकट्ठा ही जमा किया जाता है। बड़ा जमींदार सब किसानों से लगान जमा करके सरकार को देता है। सारे-का-सारा गाँव जमींदार की मिलकीयत माना जाता है और वही काश्तकारों, कारीगरों और व्यापारियों को जमीन देता है। बंजर भूमि सारे गाँव की साभी होती है, और जब जरूरत हो तो काश्त के लिए साभीदारों में बाँटी जा सकती है। ग्राम का प्रबंध या तो चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता है या फिर ग्राम के कुलीन व्यक्तियों पर इस कार्य का भार होता है। बाद में अधिकारियों से मेल-जोल के लिए एक या दो आदमी जो प्रायः नम्बरदार कहलाते हैं, लिए जाते हैं। परन्तु इनको जनता के आदमी न समझकर सरकारी व्यक्ति ही समझा जाता है। सर हेनरी मेन ने जिन ग्रामों का वर्णन किया है वे यही गाँव हैं जिनमें स्थानीय जमींदार सर्वेसर्वा होता है और गाँव की शेष जन-संख्या मुजारों या मजदूरों की संज्ञा पाती है।

भारतीय ग्रामों को पहले काफी हद तक स्थानीय स्वतन्त्रता प्राप्त थी। बादशाह, राजा या सूबेदार को जबतक गाँव से कर मिलता रहता, वे ग्राम के स्थानीय शासन में हस्तक्षेप नहीं करते थे। ग्राम से कर एकत्रित करने की जिम्मेदारी जागीरदार की होती थी और उसी का सम्बन्ध राजा या सूबेदार से रहता था। ग्राम की व्यवस्था का भार उसी पर होता था। अब दीवानी

और फौजदारी अदालतों की स्थापना व पुलिस तथा माल अधिकारियों की नियुक्ति, आवागमन के साधनों में उन्नति तथा वैयक्तिक भावना की जागृति के कारण ग्रामों की वह सदियों से चली आनेवाली स्वतन्त्रता समाप्त हो गई है। परन्तु फिर भी शासन की इकाई आज भी ग्राम ही है। अब गाँव के सभी सेवकों—नम्बरदार, मुन्शी तथा चौकीदार आदि—की तनखाह सरकार से मिलती है परन्तु फिर भी कुछ मात्रा में एकता की भावना उनमें आज भी विद्यमान है।

मद्रास में, जहाँ ग्राम अधिकारी अधिकतर वंशानुक्रम से होता है, उसे कर उगाहने, व्यवस्था तथा शान्ति बनाये रखने के अतिरिक्त दीवानी तथा फौजदारी अधिकार भी प्राप्त हैं।

बंबई में केवल मुखिया ही होता है, उसे वहाँ पटेल कहा जाता है और उसके पास अपने छोटे से गाँव में माल और पुलिस के अधिकार भी होते हैं। बड़े ग्रामों में माल तथा पुलिस पटेल अलग-अलग भी होते हैं। पुलिस पटेल को फौजदारी के मामूली अधिकार होते हैं और दीवानी छोटे अधिकार मुंसिफ द्वारा प्रयोग में लाये जाते हैं। दक्षिण में ग्राम अधिकारी वंशानुक्रम से चले आते हैं और सिंध में जहाँ कहीं ऐसी संस्थाएँ मिलती हैं वहाँ यह देखा गया है कि इन संस्थाओं के मुखिया सामन्त या कबीलेदार हैं।

बंगाल में शासकीय कार्य की दृष्टि से कोई मुखिया नहीं है। आसाम में ग्राम के परिवारों के समूह की एक सभा होती है जो मुखिया को चुनती है। परन्तु इसमें डिप्टी कमिश्नर की

मन्जूरी भी जरूरी है। ऐसे मुखिया सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त कर लेते हैं और फिर उनको जन्म-मृत्यु के आँकड़े रखने तथा पुलिस को सहायता देने का काम सौंपा जाता है। वे लोग लगान एकत्रित नहीं कर सकते। हाँ, निजी तौर पर छोटे-मोटे भगड़ों में बीच-बचाव करते हैं।

संयुक्त प्रांत में एक प्रकार से गाँव का मुखिया कोई नहीं है और लम्बरदार एकत्रित करनेवालों का सहायक मात्र होता है। ऐसी ही स्थिति पंजाब में भी है। हाँ, कुछ ही समय पहले संयुक्त प्रांत के गाँवों में मुंसिफ नियुक्त किये गये हैं जो छोटे-मोटे दीवानी भगड़ों का निर्णय करते हैं।

ब्रह्मा में (जो उस समय भारत का ही अंग था) गाँव का मुखिया गाँववालों द्वारा चुना जाता है, पर डिप्टी कमिश्नर की अन्तिम स्वीकृति आवश्यक है। मुखिया का पद प्रायः एक ही परिवार में चलता रहता है। यह मुखिया गाँव का मुंशी भी होता है। वह कर उगाहता है तथा छोटे-छोटे दीवानी तथा फौजदारी मुकदमों का निर्णय भी करता है। गाँव के बूढ़े भी ग्राम प्रबन्ध में हाथ बंटाते हैं परन्तु कानून की तरफ से उनको मान्यता प्रदान नहीं की गई है। गाँव में यदि कोई अपराध हो जाय तो उसकी जिम्मेदारी सारे गाँव पर मुशतरका तौर पर डाली जाती है।

मध्यभारत में भूमिपतियों के चुने हुए मुखिया होते हैं जिनको मुकद्दम कहा जाता है। बरार में दक्षिण की ही तरह वंशानुगत पटेलों की ही प्रणाली अपनाई जाती है पर इन पटेलों को फौजदारी अधिकार प्राप्त नहीं हैं।

बिलोचिस्तान और सीमाप्रांत (यह प्रदेश तब भारत में ही थे) में यह संस्था ग्रामों पर आधारित न हो कर गिरोहों तथा कुनबों पर आधारित है और लोगों का सरकार से सम्बन्ध जिरगों के द्वारा बना हुआ है।

सरकार ने कई ग्रामों में इस कार्य के लिए कई संस्थाओं का निर्माण भी किया है। इनमें से कुछ ये हैं:—

(१) मद्रास में स्थानीय फण्ड यूनियन का निर्माण किया गया है जो सड़कों और सफाई तथा प्रकाश आदि का प्रबंध करती है। इस कार्य के लिए उनको गृह कर (House tax) लगाने के अधिकार हैं। उनके कार्य की देखरेख मनोनीत कमेटियाँ करती हैं जिन्हें पंचायत भी कहते हैं। इनका सभापति भी मनोनीत होता है। प्रत्येक ग्राम का मुखिया इस यूनियन का पदेन सदस्य होता है। मद्रास प्रांत में इस प्रकार की कोई ४०० यूनियनें हैं। बंगाल में भी इस तरह की यूनियनें हैं।

(२) संयुक्त प्रांत, बंबई और मध्यभारत में सफाई तथा ऐसे छोटे-छोटे कार्यों के लिए विशेष फण्ड एकत्रित किये जाते हैं और इन संस्थाओं को दिये जाते हैं। परन्तु ऐसा बड़े महत्त्व के ग्रामों में ही होता है। इन स्थानीय समितियों की सहायता से ही शासनकार्य चलाया जाता है। ग्रामतौर पर ये समितियाँ मनोनीत होती हैं परन्तु मध्यभारत में इनमें कुछ निर्वाचित तत्व भी होता है।

(३) बंगाल में चौकीदारी तथा ग्राम पुलिस के लिए ग्रामों के समूह बनाये गये हैं। इनपर होनेवाले खर्च के लिए वहाँपर एक स्थानीय कर लगाया जाता है। यह कर लगाने का कार्य

छोटी पंचायतों के हाथ में है, जिनकी नियुक्ति जिला मजिस्ट्रेटों द्वारा होती है। वहाँ पर कुछ ऐसी मनोवृत्ति भी पाई जाती है कि पुलिस भी इन्हीं संस्थाओं के अधिकार में हो ताकि पुलिस का जनहित के लिए पूरी तरह से प्रयोग किया जा सके।

कुछ स्थानीय लोगों का ऐसा विश्वास है कि ब्रिटिश शासन के कारण ये प्राचीन संस्थाएँ इतनी छिन्न-भिन्न हो चुकी हैं कि अब उनके उस पुराने रूप को स्थिर करना अति कठिन है। हाँ, इस बारे में अवश्य ही यह विचारधारा सब में पाई जाती है कि ग्राम-प्रबन्ध में वहाँ के स्थानीय लोगों की राय का उपयोग अवश्य किया जाना चाहिए और इसके लिए ग्राम-समितियों की स्थापना होनी चाहिए, जिनको उनके नाम पंचायत के नाम से पुकारना चाहिए।

यह प्राचीन ग्राम-शासन-प्रणाली चाहे कितनी उत्तम तथा सुविधाजनक रही हो, पर हम उस प्राचीन प्रणाली को आज फिर लागू करने की सलाह नहीं दे सकते। लेकिन हमारा यह विश्वास है कि शासन का विकेन्द्रीकरण करने के लिए और लोगों को स्थानीय शासन प्रबन्ध की ओर आकर्षित करने के लिए यह जरूरी है कि स्थानीय पंचायतों का निर्माण किया जाय।

हमारा मत है कि जनता जिस शासकीय ढाँचे में सहयोग देगी उसका आधार सुदृढ़ होगा। अतः हमें इस विषय में तहसील आदि नई शासकीय इकाइयों की जगह पुरातन शासकीय इकाई—ग्राम की ओर ही देखना चाहिए।

भारत के प्रत्येक सूबे, जिले और यहाँ तक कि तहसील में

भी एक गाँव की मानसिक स्थिति तथा सामाजिक स्तर दूसरे से नहीं मिलता । एक गाँव यदि कुछ उन्नत विचार रखता है तो दूसरा अभी उसी पुरानी लकीर-का-फकीर बना हुआ है जिसके कारण हम सामूहिक योजना का कोई भी कार्य नहीं कर सकते, और जहाँ ऐसी संस्थाओं की स्थापना के लिए आवश्यक सामग्री मिल भी जाय वहाँ भी जातीय भगड़ों के कारण इस बात की सम्भावना में कमी आ जाती है ।

अतः जहाँ हम पंचायतों के विकास-कार्य को अति आवश्यक समझते हैं वहाँ हमारा यह विचार भी है कि यह विकास-कार्य सोच समझकर और धीरे-धीरे करना है । इस विषय में हमें सब जगह एक-सा ढंग अपनाना भी उचित न होगा । हमारा विचार है कि जिन गाँवों में परस्पर लड़ाई-भगड़े न हों, लोग विचार-शील हों उनमें एकता तथा मैत्री हो, उनमें हमें पंचायतों को कुछ थोड़े तथा सीमित अधिकार दे देने चाहिए । ये अधिकार बाद में बढ़ाये जा सकते हैं और फिर इस प्रणाली को अन्य गाँवों में लागू करना भी आसान हो जायगा ।

इस तरह की नीति को, जो कि कई सालों के कठिन परिश्रम के बाद लागू होगी, अपनाने में बड़ी सावधानी और विवेक की जरूरत है । हमें ग्रामों की अलग-अलग स्थिति का भी विचार रखना होगा । इस बारे में काफी लोगों की यह राय है कि हमें इस दिशा में विशेष जानकारों की देख-रेख में ही कार्य करना चाहिए ।

हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि ग्राम-पंचायतों के आयोजन का कार्य प्रान्त के रजिस्ट्रार आव कोऑपरेटिव सोसा-

यटीज को सौंपा जाय, क्योंकि हम यह आवश्यक समझते हैं कि इस संस्था का संगठन जिला अधिकारियों की देख-रेख में हो। ग्राम सम्बन्धी कार्य की देख-रेख तहसीलदारों तथा सब-डिवीजनल अफसरों का मुख्य कर्तव्य होना चाहिए। परन्तु शुरू-शुरू में यह आवश्यक है कि कलैक्टर को ही सहायता के लिए एक आदमी दे दिया जाय जो सारे जिले में पंचायतों का संगठन तथा उनका विकास करे।

कुछ व्यक्तियों का यह विचार है कि कई ग्रामों को इकट्ठा करके उनकी एक पंचायत बना देनी चाहिए ताकि पंचायत में अच्छे आदमियों के चुनने में सुविधा रहे और पंचायत को स्थानीय झगड़ों से भी बचाया जा सके। हम यह तो समझते हैं कि इस तरह की कुछ छूट उनको अवश्य मिलनी चाहिए परन्तु सब जगह इसी मार्ग को अपनाना उचित न होगा और इससे इन संस्थाओं में कुछ कृत्रिमता-सी आ जायगी। हम चाहते हैं कि स्थानीय भावनाओं का ग्राम के हित के लिए ही उपयोग किया जाय। अतः ग्राम को ही शासकीय इकाई बनाना अधिक उचित होगा। हाँ, विशेष अवस्था में किसी स्थान पर एक से अधिक ग्रामों को भी इकट्ठा किया जा सकता है। (जबकि गाँव बहुत ही छोटे हों या जहाँ परस्पर के भेदभाव को मिटाना हो।)

पंचायत एक छोटी-सी संस्था होनी चाहिए और उसके सदस्यों की संख्या स्थानीय स्थिति पर छोड़ देनी चाहिए। हमारा विचार है कि उनकी संख्या कम-से-कम ५ ठीक रहेगी। अगर गाँव में मुखिया हो तो हम समझते हैं कि उसको ही पंचायत का पदेन सभापति बनाना चाहिए क्योंकि उसका वहाँ पहले से ही

असर-रसूख होगा ।

कुछ व्यक्तियों ने यह विचार भी प्रकट किये हैं कि पंचायत के सदस्य बाहर से मनोनीत किये जायं परन्तु हम इस बात के हक में नहीं हैं । ऐसा करने से तो हमारा यह उद्देश्य कि ग्राम का संयुक्त रूप में हित किया जाये, जाता रहता है । दूसरे, ऐसा करने से पंचायतों पर पूरी तरह से सरकारों अफसरों का हाथ हो जायगा, क्योंकि वही पंचायतों के सदस्यों को मनोनीत करेंगे । हम उन व्यक्तियों के साथ सहमत हैं जो यह कहते हैं कि सदस्यों का चुनाव होना चाहिए । परन्तु इस चुनाव के लिए हम ऐसी कोई प्रणाली निर्धारित नहीं करते जिससे कि गाँववाले सर्वथा अपरिचित हों । हमारे विचार में तो गाँव के लोगों द्वारा ग्राम चुनाव ही ठीक हैं जो तहसिलदार या सब-डिवीजनल आफिसर के सामने एक मीटिंग में होने चाहिए, या जहाँ पंचायतों के स्पेशल अफसर हों, वहाँ उनके सामने होने चाहिए । इस सभा में ग्रामवासियों से यह पूछा जाय कि वे किसको अपना प्रतिनिधि चुनना चाहते हैं । इस प्रकार बहुत सारे स्थानों में अच्छा चुनाव हो सकता है । परन्तु यदि उनमें कलह या मतभेद हो तो वहाँ पर निर्वाचन अफसर को स्वयं यह देखना चाहिए कि प्रत्येक जाति तथा वर्ग के प्रतिनिधि उसमें लिये जायं ।

जिस ग्राम में कोई भी मुखिया न हो, वहाँ सभापति का चुनाव भी इसी प्रकार होना चाहिए ।

पंचायतों के सदस्यों की पदावधि का निर्णय स्थानीय सरकार को करना चाहिए । इस निर्णय में उसे उस स्थान की अवस्था को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए । हमारे विचार में अन्तिम

निर्णय ग्रामीणों का ही होना चाहिए। सब-डिवीजनल अफसर को इस बात का पूरा अधिकार होना चाहिए कि यदि वह किसी सदस्य को अनुपयुक्त समझे तो उसको सदस्यता से हटा दे। इस प्रकार रिक्त होनेवाले स्थानों को सुविधा के अनुसार इसी रीति से भरना चाहिए।

पंचायतों के हाथ में कई अधिकार तथा कर्त्तव्य दिये जाने का सुभाव है। लेकिन जो लोग इनको अधिक अधिकार भी देना चाहते हैं उनका भी यही सुभाव है कि ये अधिकार तथा कर्त्तव्य उनको क्रमशः तथा अनुभव प्राप्त करने के बाद दिये जाने चाहिए। हमारा भी यही विचार है। इसमें उस स्थान को विशेषताओं का विचार भी रखा जाना चाहिए और यह भी देखना चाहिए कि उस पंचायत ने अपने जिम्मे छोड़े गये पिछले कामों को किस प्रकार पूरा किया है। इस दिशा में हम निम्न-लिखित सुभाव देते हैं :—

ग्राम पंचायत के पास अपने गाँव के छोटे-छोटे दीवानी तथा फौजदारी मुकदमों को सुनने के अधिकार होने चाहिए। हमें पंजाब तथा पास की रियासतों से पता चला था कि पटियाला तथा फरीदकोट में छोटे-छोटे दीवानी और फौजदारी मुकदमों के सुनने के अधिकार ग्राम-पंचायतों को दिये गये हैं और इसका परिणाम अच्छा ही रहा है।

कई लोगों का कहना है कि पंचायतों को इस तरह के अधिकार देने से अन्याय, लड़ाई-झगड़ा तथा भ्रष्टाचार आदि बढ़ने का खतरा है। उनका यह भी कहना है कि क्योंकि लोग कचहरियों के आदी हो चुके हैं इसीलिए इस तरह के साधारण

पंचायती निर्णय को शायद ही कोई महत्व प्रदान किया जाय। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के अधिकार ग्राम के मुखिया को पहले ही प्राप्त हैं। लेकिन हमारा ख्याल है कि इस तरह के मामले पंचायतों द्वारा और अच्छी तरह से निपटाये जा सकते हैं। इस बात की भी बड़ी आवश्यकता है कि छोटे-छोटे मुकदमों के लिए लोगों को दूर-दूर का सफर करने से बचाया जाय और फिजूल की मुकदमेबाजी को रोका जाय। निस्संदेह ग्राम-पंचों से कई बार गलती भी हो जाती है, लेकिन ऐसा तो अदालतों में भी हो जाता है। झूठी गवाही तथा पैसे का प्रभाव गाँव पंचायत में कम होगा क्योंकि वहाँ के लोग वास्तविकता को आसानी से जान सकते हैं।

न्याय पंचायत की प्रक्रिया बड़ी सरल और सहज होनी चाहिए। हम उन लोगों से सहमत हैं जो यह कहते हैं कि वादी तथा प्रतिवादी दोनों को व्यक्तिगत रूप से न कि वकील के जरिये पंचायत के सामने हाजिर होना चाहिए और एक बार मुकदमे का निर्णय हो जाने पर अपील का अधिकार नहीं होना चाहिए। हाँ, जहाँ अदालतों को ऐसा प्रतीत हो कि अन्याय हुआ है, वहाँ उन मुकदमों पर अदालत पुनः विचार कर सकती है। परन्तु इससे अधिक कोई प्रतिबंध पंचायतों पर नहीं होना चाहिए। पंचायतों को व्यर्थ की घुण्डियों में फँसाने से वे भली प्रकार नहीं पनप सकेंगी। हम यह चाहते हैं कि समता के आधार पर गाँव की अपनी एक अदालत हो जो कि वर्तमान अदालतों की बुराइयों से बची हुई हो।

इस सिलसिले में हमारा दूसरा सुझाव यह है कि ग्राम-

पंचायतों को कुएँ, तालाब, गाँव की सफाई तथा सड़कों के निर्माण और सराय इत्यादि के निर्माण तथा उनकी मरम्मत के लिए रुपये खर्च करने के अधिकार दिये जायें।

भारत के हालात से जो व्यक्ति परिचित हैं वे सब इस बात को मानते हैं कि गाँव पर डाला गया सफाई का भार असफल रहा है। हम यह ज्यादा उचित समझते हैं कि ग्राम-पंचायतों को प्रोत्साहन दिया जाय कि वे जिस प्रकार से उचित समझें, अपने गाँव की सफाई रखने के लिए स्वयं प्रबन्ध करें।

दूसरा कार्य जो कि पंचायतों को दिया जाना चाहिए वह शिक्षा में दिलचस्पी लेने, गाँव में स्कूलों के बनाने और उनकी मरम्मत का खयाल रखने का काम है। ब्रह्मा और आसाम में इस तरह किया जा रहा है और हम समझते हैं कि इसे और जगह भी अपनाया जाना चाहिए। इससे पी. डब्ल्यू. डी. का बहुत सारा काम हल्का हो सकता है।

हम यह भी चाहेंगे कि ग्राम्य स्कूलों का कुल प्रबन्ध भी पंचायतों के हाथ में हो, यथा, हाजरी का समय, छुट्टियों के दिन तथा इनाम आदि देने और बच्चों की फीस माफ करने आदि के काम उनके हाथ में होने चाहिए। बम्बई जैसे कुछ प्रान्तों में, ऐसा प्रतीत होता है, कि एक ग्राम स्कूल कमेटी होती है जो समय-समय पर गाँव में जाती है और उनको अपने सुझाव देती है। यदि इस तरह की पंचायती स्कूल कमेटियाँ बनाई जायें और उनको कुछ निश्चित अधिकार दिये जायें तो वे इस विषय में निश्चय ही अधिक दिलचस्पी लेंगी। पर अध्यापकों की नियुक्ति, पाठ्यक्रम, स्कूल का निरीक्षण आदि विषय अवश्य जिला

बोर्ड पर छोड़ देने चाहिए। यह इसलिए है कि अध्यापकों को गांव के कुछ लोगों के रहम पर नहीं छोड़ा जा सकता। ऐसे गांव जहां पर जाति-पाति की भावना प्रबल हो, वहां अछूतों की पढ़ाई के लिए विशेष आयोजन होना चाहिए।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हमें कुछ पंचायतों को इस तरह के अधिकार जरूर देने चाहिए जिससे उन्हें इनमें दिल-चस्पी लेने में प्रोत्साहन मिले। हम यह भी आवश्यक समझते हैं कि प्राथमिक शिक्षा मन्दिरों, मठों तथा मक्तियों को सरकारी सहायता देकर फैलाई जानी चाहिए जैसा कि सिंध, ब्रिलोचिस्तान तथा ब्रह्मा में होता है। यदि स्थानीय शिक्षा में पंचायत का भी कुछ हाथ हो, तो इस प्रकार के शिक्षा स्रोतों को और अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

हमारे दूसरे सुझाव ये हैं कि पंचायतों का कांजीहौस तथा मण्डियों पर भी अधिकार होना चाहिए। लगान की वसूली, खेती के लिए कर्ज, सिंचाई के लिए पानी की बंटवाई, शराब के ठेकों के लिए स्थान निश्चित करना, अकाल में लोगों को सहायता देना, किसी बीमारी के फूट पड़ने पर उसकी रोक-थाम के उपाय सोचना, इत्यादि कार्यों में पंचायतों का हाथ होना चाहिए।

गांव के कांजीहौस तथा मण्डी, जिनका गांव से सीधा सम्बन्ध होता है, आसानी से ही इस संस्था को दिये जा सकते हैं; और जहांतक लगान और खेती के कर्ज का सम्बन्ध है, या खेती को पानी बांटने की बात है, यह काम गांव की परिषद् के सुपुर्द किया जा सकता है। अच्छी तरह से काम करने वाली पंचायत अकाल या बीमारियों के रोकने में बड़ी सहायता दे सकती है।

पंचायतों के जिम्मे जो काम किये जायं, उनमें उनकी सफलता या असफलता का निश्चय किसी एक कार्य के सफल या असफल होने से नहीं करना चाहिए और असफलता की अवस्था में भी उनके साथ नरमी का बर्ताव किया जाना चाहिए। हां, यदि पंचायत पूरी तरह से यह प्रकट कर दे कि वह कार्य करने के योग्य नहीं है, तो उस कार्य को उससे छीना जा सकता है और उस कार्य को सब-डिवीजनल अफसर या पंचायत अफसर खुद कर सकता है।

पंचायतों के सफल तथा लोकप्रिय होने के लिए आवश्यक है कि वे स्थानीय कर न लगायें और न ही ऋण हासिल करें।

पंचायतों की आय के निम्न साधन होने चाहिए—

- (१) लोकल रेट (स्थानीय कर) का कुछ भाग।
- (२) जिला बोर्डों तथा कलक्टरों द्वारा अनुदान।
- (३) ग्रामीण काँजीहौस तथा मेलों व मण्डियों से प्राप्त आय।
- (४) मुकदमों की फीस।

आय-व्यय के सम्बन्ध में सरल नियम होने चाहिए और कड़ा आडिट (जांच) नहीं होना चाहिए।

आय का साल के भीतर खर्च करना आवश्यक नहीं होना चाहिए। उपयुक्त काम में खर्च किये जाने तक जमा रहना उचित होगा।

सरकार के निचले स्तर के कर्मचारियों को पंचायत के कामों में हस्तक्षेप के अधिकार नहीं होने चाहिए, क्योंकि ये

स्थानीय अधिकार व नियंत्रण में रुकावट डालते हैं।

कई साक्षियों का कहना है कि पंचायतों को जिला तथा तालुका बोर्डों के अधीन किया जाय, पर हम इस योजना से सहमत नहीं हैं। इन संस्थाओं के पास काफी काम है और यह पंचायतों से निपट नहीं सकेंगी। पंचायतों का निरीक्षण व पर्यवेक्षण सरकारी कर्मचारियों के अधीन रहना चाहिए। उक्त बोर्ड पंचायतों को अनुदान दे सकते हैं।

ग्राम स्तर के कर्मचारियों का वेतन कम होने के कारण उनके विरुद्ध भ्रष्टाचार की शिकायतें आती हैं। सरकार को इस तरफ विशेष ध्यान देना चाहिए।

ग्राम्य अधिकारियों के सम्बन्ध में शिकायतों के सुनने तथा उन्हें निपटाने के अधिकार सब डिवीजनल अफसर को होने चाहिए और उसकी कोई अपील नहीं होनी चाहिए।

आयोग की रिपोर्ट की सभी मुख्य बातें ऊपर आ चुकी हैं। इसके प्रस्तावों के फलस्वरूप अलग-अलग प्रान्तों में अलग-अलग अधिनियम बने और ऐसी मनोनीत पंचायतों का निर्माण हुआ जिनमें कई स्थानों पर नम्बरदार ही प्रधान था। इनका विशेष कार्य छोटे-छोटे विवादों का निर्णय करना ही था। इससे सत्ता प्राप्ति की लालसा से उत्पन्न होनेवाले दुर्गुण पनपने लगे और रचनात्मक वृत्तियों का ह्रास हुआ। इन पंचायतों से ग्रामों के उत्थान, स्वावलम्बन तथा विकास के कार्यों को न तो प्रोत्साहन मिला और न ही इस ओर ध्यान दिलाने के चेष्टा ही की गई। इस काल की यह पंचायत वस्तुतः नौकरशाही की एजेन्सियां बन कर रह गईं और पंचायती राज की मौलिक

भावना विकसित न हो पाई । न ही यह पंचायतें जन समुदाय की प्रतिनिधि बन सकीं ।

पर इस रिपोर्ट से, और उसके स्वीकार कर लिये जाने से, एक बात अवश्य हुई । लम्बे समय तक निष्क्रिय रहने के बाद भारतीय ग्राम-पंचायतें एक बार फिर उठीं । यह बात दूसरी है कि उनका कार्यक्षेत्र बिल्कुल सीमित था । इस तरह इस रिपोर्ट के स्वीकार किये जाने को हम भारत में पंचायतों के पुनरुत्थान का प्रारम्भ मान सकते हैं ।

ब्रिटिश शासन में पंचायतों का विकास

सन् १९०६ में शाही विकेन्द्रीकरण आयोग के स्थापित होने से पहले, सन् १८०० से लेकर सन् १९०० तक, ब्रिटिश शासन के १०० वर्षों में देश में ३१ बड़े दुष्काल पड़े जिसमें लाखों व्यक्तियों की जान गई। अकाल के कारणों की जाँच करने के लिए सरकार ने समय-समय पर कई आयोगों की नियुक्ति की।

आखिर, जैसा कि हम हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं, १९०६ के शाही विकेन्द्रीकरण आयोग की रिपोर्ट के बाद इस दिशा में ठोस कदम उठाये गए और देशमें पंचायतों की पुनर्स्थापना हुई।

सन् १९१६ में माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुझावों के कारण गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट के पास होने के बाद पंचायतों की ओर कुछ और ध्यान दिया गया। अब ग्राम-सुधार के कार्यों को भी अपनाया जाने लगा। पर ग्राम-सुधार का कार्य पंचायतों के सुपुर्द नहीं किया गया—वह जिला अधिकारियों के अधीन था। इस काल में कुछ गैर सरकारी व्यक्ति और संस्थाएं भी ग्राम-सुधार के क्षेत्र में उल्लेखनीय काम करने लगीं थीं। कांग्रेस, रामकृष्ण मिशन, आर्यसमाज, ईसाई तरुण युवक संघ (वाई. एम. सी. ए.) आदि संस्थाएं और महात्मा गांधी जैसे नेता विशेषरूप से सक्रिय थे। अतः यह कहना अत्युक्ति न होगा कि इस दिशा में सरकार

की ओर से उठाये गए कदम खासतौर पर गांधीजी के और आमतौर पर अन्य संस्थाओं के काम की ओर से जनता का ध्यान हटाने के लिए ही शुरू किये गये थे ।

१९१६ के गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट के लागू होने का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि पंचायतों का विषय केन्द्रीय सरकार का न रह कर प्रान्तीय सरकारों का विषय बन गया । इसके बाद कई राज्यों में इससे सम्बन्धित कानून बन गये । मद्रास व बंबई में इस दिशा में सबसे पहले कदम उठाये गये । इसके बाद उत्तर प्रदेश में पंचायत सम्बन्धी कानून बना । धीरे-धीरे ब्रिटिश भारत के सभी प्रान्तों में पंचायत सम्बन्धी कानून बन गये और पंचायतों की स्थापना हो गई ।

१९१६-२० के आसपास ग्रामीण जनता की दशा सुधारने की दो प्रमुख योजनाएं सामने आईं । एक योजना श्री मानवेन्द्रनाथ राय की 'जनता-योजना' थी और दूसरी महात्मा गांधी की 'ग्रामोद्धार-योजना' थी । दोनों योजनाओं का उद्देश्य एक ही था—ग्रामीण जनता की हालत सुधारना—पर दोनों का तरीका अलग-अलग था । गांधीजी की योजना की मौलिकता यह थी कि यह जनता की आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक भावनाओं को भी उठाना चाहती थी । इस योजना में पंचायतों को विशेष स्थान दिया गया था । अन्य सामान्य कार्यों के साथ-साथ ये कार्य भी पंचायतों के सुपुर्द किये जाने का प्रस्ताव रखा गया—कर-वसूली, शान्ति-स्थापन, न्याय, प्रारम्भिक शिक्षा, स्वास्थ्य तथा चिकित्सा, प्रसूति सहायता, मातृमंगल तथा शिशु-कल्याण, भवनों तथा पक्के कुओं का प्रबन्ध, कृषि-विकास, ग्राम्य व्यापार का नियमन तथा

सहकारिता आदि ।

ग्रामोद्धार के इन आरम्भिक प्रयोगों में गुड़गावां के तत्कालीन डिप्टीकमिशनर श्री एफ० एल० ब्रेन 'गुड़गावां प्रयोग' का भी अपना स्थान है । इस प्रयोग का विशद वर्णन तो यहां करना संभव नहीं है पर यह बात अवश्य है कि इससे यह परिणाम निकला कि ग्रामोत्थान के कार्य में ग्राम पंचायतों का बनाना एक सहायक कार्य ही नहीं है बल्कि एक आवश्यक कार्य है ।

जिस समय ब्रिटिश भारत में उक्त कानून के अंतर्गत पंचायतों की स्थापना हो रही थी और उनसे सम्बन्धित कानून बन रहे थे, उस समय कुछ देशी राज्यों में भी ऐसे ही कदम उठाये जा रहे थे । त्रावणकोर और बड़ौदा राज्य के शासकों का तो दावा था कि उनका पंचायती संगठन ब्रिटिश भारत के पंचायती संगठन से कहीं ज्यादा है ।

गांधी योजना के अंतर्गत पंचायतों का निर्माण औंध के छोटे से राज्य में भी हुआ । वहां गांवों के सारे काम पंचायतें ही करती थीं और राजकीय आय का ५०% पंचायतों को जाता था । यह संगठन इतना अच्छा था कि गांधीजी ने भी इसकी सराहना की थी और औंध के पंचायत संगठन को एक आदर्श संगठन माना जाने लगा था ।

मांटैग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के लागू होने के बाद ब्रिटिश भारत में पंचायतों से सम्बन्धित विधान बनने और पंचायतों के स्थापित होने का क्रम यह रहा—

मद्रास प्रान्त में सन् १९२० में पंचायत कानून बना । इसे स्थानीय संस्थाओं और पंचायतों पर अधिकार थे । 'ग्राम्य न्याया-

‘लय एक्ट’ (विलेज कोर्ट्स एक्ट) के अन्तर्गत पंचायतों को न्याय-सम्बन्धी अधिकार भी दिये गये थे । बंबई के पंचायत एक्ट के अंतर्गत हर २००० की जनसंख्या वाले गांव के लिए एक पृथक ग्राम-पंचायत का निर्माण होता था । पंचायतें चुनाव द्वारा ही बनती थीं । ग्राम-पंचायत के सदस्यों में से ही न्याय-पंचायत का निर्माण होता था । बंगाल में सन् १९१९ में स्थानीय स्व-शासन एक्ट बना । उत्तर प्रदेश में १९२० में पंचायत एक्ट बना । इस एक्ट के अनुसार स्थापित ग्राम-पंचायतों को न्याय-पंचायतों के अधिकार भी प्राप्त थे । लेकिन पंचायतें विकास कार्य में सहायता नहीं दे सकती थीं—यह कार्य जिला अधिकारियों के ही अधीन रहा । पंजाब में सन् १९३९ में बना एक्ट उत्तर प्रदेश के एक्ट की तरह ही था । इसके अतिरिक्त इस एक्ट से प्रान्तीय सरकार को पंचायतों में नामजदगी का अधिकार भी दे दिया गया था । मध्य प्रदेश में इस सम्बन्ध में अन्तिम कानून १९४६ में पास हुआ था । इस कानून द्वारा वहाँ की आदिम जातियों के लिए अलग पंचायतों की व्यवस्था की गई । न्याय-पंचायत वैसे तो अलग थी, पर उसका निर्माण ग्राम-पंचायत के सदस्यों से ही होता था ।

सन् १९३५ में जनता की स्वशासन की मांग के फलस्वरूप १९३५ का गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट सामने आया । इस एक्ट के अंतर्गत प्रान्तों में लोकप्रिय मंत्रिमण्डलों और अर्धलोकप्रिय विधान-सभाओं की स्थापना हुई । पंचायतों का काम लोकप्रिय मन्त्रियों को दिया गया । अधिकतर प्रान्तों में इस सम्बन्ध में बड़े उत्साह से काम शुरू किया गया । किन्तु इस प्रकार बने मन्त्रि-

मण्डल बहुत दिन तक न चल सके । १९३६ में शुरू होनेवाले विश्व-युद्ध में भारत के भाग लेने के प्रश्न पर भारत सरकार और कांग्रेस में मतभेद के कारण अधिकतर प्रान्तों से लोकप्रिय शासन समाप्त हो गया । पंचायतों का थोड़ा-बहुत काम तो चलता रहा, पर महायुद्ध के कारण उनकी ओर अधिक ध्यान न दिया जा सका और यह संगठन शिथिल हो गये । महायुद्ध के पश्चात् देश में फिर चुनाव हुए और प्रान्तों में लोकप्रिय मंत्रिमण्डलों का निर्माण फिर से हुआ । दो ही वर्ष में देश स्वतंत्र भी हो गया । युद्ध के बाद का विकास स्वतंत्र भारत में पंचायतों के विकास से अलग नहीं किया जा सकता, और इसलिए हम उसका अध्ययन अगले अध्याय में ही करेंगे ।

उपरोक्त वर्णन से एक बात स्पष्ट हो जाती है—पंचायतों के पास बहुत ही सीमित अधिकार थे और उनके संगठन को काफी दाब कर रखा जाता था । पंचायतों के विकास और शक्ति प्राप्त करने के रास्ते में भी ब्रिटिश सरकार की तरफ से कई रुकावटें डाली गई थीं । इन रुकावटों और सीमित कार्यक्षेत्र के कारण पंचायतों के कार्य में पग-पग पर रुकावटें आती थीं और उनके अधिकार और सत्ता नाम के ही रह जाते थे । अगले पृष्ठों में हम इनमें से कुछ असुविधाओं की चर्चा करेंगे ।

किसी भी स्थानीय संस्था की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसकी माली हालत अच्छी हो—आर्थिक स्वावलम्बन स्थानीय संस्था के सफल कार्य संचालन की एक बड़ी गारंटी है ।

यह एक मानी हुई बात है कि भारत की स्थानीय संस्थाएं—और विशेषकर पंचायतें इस क्षेत्र में अंग्रेजी राज के आने से

आज तक कभी स्वावलम्बी नहीं रहीं। सन् १९३५ में स्थानीय स्वशासन के सूरत-सम्मेलन में अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए स्वर्गीय सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा था—“कहा जाता है कि स्थानीय स्वशासनिक संस्थाओं का मतदान-क्षेत्र विस्तृत कर दिया गया है और उनकी शक्तियाँ भी बढ़ गई हैं। यह बात ठीक है। पर इन बातों से उस समय तक क्या लाभ कि जबतक उनकी माली हालत और आय के साधनों की ओर ध्यान न दिया जाय ? इन साधनों के बिना अधिकारों का विस्तार करना मरी हुई औरत को जेवरों से सजाने के बराबर है।”

समय-समय पर नियुक्त जाँच समितियों और आयोगों की रिपोर्टों, गवर्नर जनरलों की शासन-रिपोर्टों और प्रस्तावों में भी किसी-न-किसी रूप में इस बात को माना गया है। सन् १८०० की लार्ड मेयो की शासन-रिपोर्ट में इस विषय में कहा गया है—“स्थानीय हितों की ध्यान में रखने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई तथा स्थानीय जनता के हित-संबंधी अन्य कार्यों में खर्च होनेवाले धन की उचित देख-भाल का प्रबंध होना जरूरी है। इसको कार्यरूप में परिणित करके ही स्थानीय स्वशासन को मजबूत किया जा सकता है।...इससे नगरपालिकाएं भी मजबूत होंगी।”

सन् १८६२ में दिये गये लार्ड रिपन के एक शासन-आदेश द्वारा प्रान्तीय सरकारों को इस बात की जांच करने का आदेश दिया गया कि गैर-सरकारी सदस्यों से निर्मित या निर्वाचित सदस्यों से निर्मित स्थानीय संस्थाओं को कौन-कौन से वित्तीय साधन हस्तांतरित किये जा सकते हैं ? उनसे यह भी पूछा गया

था कि सारे देश में स्थानीय-संस्थाओं की कर-व्यवस्थाओं में समता लाने के लिए क्या कदम उठाये जा सकते हैं ? साथ में यह निर्देश दिया गया था कि ये साधन ऐसे हों कि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें बदला तथा बढ़ाया जा सके ।

इस आदेश के फलस्वरूप १८८३-८५ में प्रांतों में संबंधित कानून बनाये गये । उस समय देहाती-बोर्डों (रूरल बोर्ड) के काम नगरपालिकाओं जैसे ही थे, यथा—स्वास्थ्य, यातायात, शिक्षा तथा अकाल-सहायता आदि । स्थानीय संस्थाओं की आय के मुख्य साधन थे—कर, फीस, चुंगी, काँजीहौस-फीस, शिक्षा संबंधी सरकारी अनुदान, चिकित्सा संबंधी सरकारी अनुदान आदि । १८८६ से १८९५-९६ तक—७ वर्षों में—स्थानीय संस्थाओं की कुल आय २,६७,८३,६८२ रुपये थी और इसमें से १,४१,०५,०२८ रुपये सड़कों से (चुंगी) प्राप्त हुए थे ।

पिछले अध्याय में हम १९०७ में नियुक्त हुए विकेन्द्रीकरण आयोग की रिपोर्ट का उल्लेख कर चुके हैं । इस रिपोर्ट में इस बात को स्वीकार किया गया है कि स्थानीय संस्थाओं के वित्त अपर्याप्त हैं । भारत सरकार के तत्कालीन गृह-सचिव सर हरबर्ट रिजले के शब्दों में, “मैं समझता हूँ कि यह मान लिया जाना चाहिए कि जिला बोर्डों तथा नगरपालिकाओं की आय के साधन उनका आधुनिक ढंग से काम चलाने के लिए अपर्याप्त हैं । नगरपालिकाओं में यह कमी जल योजनाओं और नालियों के संबंध में विशेष रूप से सामने आती है । इन चीजों की, और विशेषकर जल-योजनाओं की, उपयोगिता अब सब जगह समझी जा रही है ।”

आयोग ने अपने सुझावों में कहा है—“पंचायतों को सफल बनाने के लिए नये क़रों की सिफ़ारिश करना ठीक न होगा। इन्हें ज़िला बोर्डों द्वारा लगाये गये क़रों का एक भाग मिलना चाहिए और स्थानीय महत्त्व के कार्यों के लिए उन्हें अनुदान दिये जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त काँजीहौस से होने वाली आय पंचायतों को ही दी जानी चाहिए।”

विकेन्द्रीकरण आयोग की रिपोर्ट पर भारत सरकार ने कई निश्चय किये। १९१५ की शासन रिपोर्ट में पंचायतों के बारे में कहा गया है कि “पंचायतों को निश्चित कर लगाने की अनुमति दी जानी चाहिए, लेकिन इस पर प्रान्तीय सरकार का नियन्त्रण रहना चाहिए और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कर-वसूली में पंचायतें इतनी लीन न हो जायें कि उसके पीछे वे अन्य कार्यों में शिथिल हो जायें।”

माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों में भी पंचायतों की वित्तीय समस्या के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। सुधारों की रिपोर्ट में कहा गया है, “पंचायतों की उन्नति की सम्भावनाएं उनको दिये गये अधिकारों और उनके कर्त्तव्यों पर निर्भर होती हैं। जहाँ पंचायतें सफल हों, वहाँ उन्हें छोटे-छोटे मामलों में दीवानी और फौजदारी अधिकार दे दिये जाने चाहिए, साथ-ही-साथ स्वास्थ्य और शिक्षा के विषय भी उन्हींको दे दिये जाने चाहिए। उन्हें स्थानीय कर (स्वाई) लगाने के अधिकार का दिया जाना भी ठीक है।” १९१८ की शासन रिपोर्ट में इस बात को माना गया है कि पंचायतों को स्थानीय स्वशासन का एक यांत्रिक भाग न समझकर ग्रामों के सामूहिक विकास का साधन समझना चाहिए जिसका

आधार ग्रामवासियों के वंशगत सम्बन्ध और उनकी सामान्य आवश्यकताएँ हैं। इस बारे में निम्नलिखित सुझाव दिये गये थे—

१. ग्राम-कर्मचारी पंचायतों से सम्बन्धित होने चाहिए। पंचायत सदस्य चुनाव द्वारा लिये जाने चाहिए।

२. पंचायतों के कार्य—ग्राम-स्वास्थ्य, शिक्षा तथा छोटे-छोटे दीवानी व फौजदारी मुकदमे होने चाहिए।

३. जहाँ-जहाँ सम्भव हो, पंचायतों को मालगुजारी पर लगाई जानेवाली स्वाई का कुछ भाग मिलना चाहिए। पंचायतों को स्वस्वीकृत कर लगाने का भी अधिकार होना चाहिए। इन करों की आय उन्हीं कार्यों पर खर्च की जानी चाहिए कि जिनके लिए वे वसूल किये जावें।

साईमन कमीशन की रिपोर्ट और १९३५ के गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया एक्ट का पंचायतों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इस सारे विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अंग्रेजी शासनकाल में शासकों ने भी इस बात को माना था कि जबतक पंचायतों की आर्थिक दशा सन्तोषजनक न होगी तबतक वे कुछ काम न कर सकेंगी। यह बात ब्रिटिश शासनकाल में जितनी ठीक थी आज भी उतनी ही ठीक है। लेकिन ब्रिटिश शासकों की यह सारी सिफारिशें कागजी ही रहीं, क्योंकि उनमें से बहुत कमको वास्तविक रूप से अमल में लाया गया, और पंचायतों की दशा पहले जैसी ही रही और उचित धन तथा अधिकारों के अभाव में पंचायतें न मुकदमेबाजी को कम कर सकीं, न किसानों के कार्य के भार को हलका कर सकीं, न उन्हें स्वशासन की शिक्षा दे सकीं और न देश के देहातों की हालत में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन ही ला सकीं।

स्वतंत्र भारत में पंचायतें

१५ अगस्त १९४७ को भारत ने एक नये युग में प्रवेश किया । इस दिन अपनी गुलामी के बंधन तोड़ हमारा देश संसार के स्वाधीन देशों की मंडली में शामिल हो गया । हम सभी भारत के स्वातंत्र्य संग्राम में परिचित हैं और स्वाधीनता संग्राम की कठिनाइयों और बलिदानों की याद अभी भी ताज़ा है । देश के एक कोने से दूसरे कोने तक, भारतीय गणराज्य के हर राज्य में मिलने वाले पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान से आकर देश में बसे शरणार्थी आज भी भारत के दुःखद विभाजन की याद दिला हमारे दिलों में टीस उत्पन्न कर देते हैं । लेकिन फिर भी सभी लोग इस बात को मानते हैं कि इतने पर भी हमारी आज़ादी हमारे लिए हर्ष और अभिमान की बात है ।

स्वतंत्रता के पूर्व हमारे अधिकतर नेता और देशवासी किसी भी बुरी बात के लिए कह देते थे कि यह विदेशी शासन के कारण है । हम किसी भी बुराई का दोष विदेशी के माथे बड़ी आसानी के साथ मढ़ देते थे—“गरीबी ?—यह २०० साल के अंग्रेजी राज का अभिशाप है । स्वाधीन भारत में कोई गरीब नहीं होगा ।” “बेकारी और भिखमंगी ?—शासकों के अलावा इसकी जिम्मेदारी और किस पर रखी जा सकती है ? स्वतंत्र भारत का कोई नागरिक बेकार नहीं घूमेगा और कोई किसी के

आगे भिक्षा के लिए हाथ नहीं फैलायेगा ।” इसी तरह से हम अकाल, बीमारी, महामारी, साम्प्रदायिक दंगे, औद्योगिक विवाद, मजदूरों की हड़ताल, और यहाँ तक कि चोरी और डकैती तक की जिम्मेदारी विदेशी शासकों पर डाल दिया करते थे । बुराइयों की इस पृष्ठभूमि में हमारे अधिकांश देशवासियों के लिए यह मान लेना स्वाभाविक था कि भारत के स्वाधीन होते ही यह सारी बुराइयाँ एकदम, और अगर एकदम नहीं, तो कम-से-कम समय में अवश्य दूर हो जावेंगी और हमारे स्वप्नों का भारत मूर्त हो हमारे सम्मुख आ जावेगा । हमारी यह कल्पना कहां तक फलीभूत हुई है ? सब जानते हैं कि यद्यपि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद हमारे देश ने काफी प्रगति की है, तथापि अभी भी हमारी कल्पना का भारत दूर ही है ।

सबसे बड़ी शिकायत हमारे अधिकतर देशवासियों को इस बात की है कि हमारा शासनतंत्र मूलतः बिल्कुल पहले जैसा ही रहा है । भ्रष्टाचार पहले से किसी भी तरह आज कम नहीं है, बल्कि कई लोगों के मतानुसार तो पहले से अधिक खुला हो गया है । अफसरशाही आज भी पहले की तरह ही चलती है । निरीह जनता आज भी पुलिस से उसी तरह घबराती है कि जिस तरह वह १९४७ के पहले घबराती थी । इन सब बातों का क्या कारण है ? क्या इन्हें किसी तरह से दूर नहीं किया जा सकता ? इस अध्याय में हम इन्हीं सब बातों को देखेंगे ।

हमारा संविधान और पंचायतें

पिछले पृष्ठों में हम भारत की पंचायती परम्परा का

काफी बारीकी से अध्ययन कर चुके हैं। हम देख चुके हैं कि भारतीय शासन-प्रणाली मूलतः विकेन्द्रित होती थी—उसका आधार स्वावलम्बी तथा स्वायत्तशासी ग्रामों का पंचायती संगठन था। इस प्रकार भारत के पंचायती राज का मौलिक सिद्धान्त विकेन्द्रीकरण की वर्तमान धारणा से बहुत भिन्न है। विकेन्द्रीकरण का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि सत्ता कहीं-न-कहीं केन्द्रित है और उसे वहाँ से वितरित किया जाना चाहिए। सत्ता के केन्द्र से इस प्रकार वितरित किये जाने को ही सामान्यतः विकेन्द्रीकरण कहा जाता है। पर भारतीय पंचायती परम्परा में सत्ता को इन अर्थों में कभी केन्द्रित नहीं किया गया। 'भारत की खोज' में श्री नेहरू ने लिखा है—“भारत में कभी भी धार्मिक राज्य-तंत्र नहीं था।...राजकीय सत्ता की सारी धारणा यूरोप के सामन्तवाद से, जहाँ सम्राट की सत्ता अपने शासनक्षेत्र में सभी व्यक्तियों और वस्तुओं पर होती थी, भिन्न थी। वह अपनी यह सत्ता सामन्तों तथा जागीरदारों को प्रदान करता था। इस प्रकार सत्ता की एक पदशाही स्थापित हो गई थी। यह राज-प्रभुत्व की रोमन धारणा का ही विकसित रूप था। भारत में इस प्रकार की कोई बात नहीं थी।...भारत में किसान कभी भी जागीरदार का दास नहीं रहा।...कृषि-व्यवस्था सहकारी अथवा सामूहिक श्रम पर आधारित थी।” इससे यह स्पष्ट हो जाता है जहाँ यूरोप में शासक सत्ता का केन्द्र और आधार होता था वहाँ भारत में सत्ता का आधार सहकारी ग्राम था, और शासक अपनी सत्ता इसी आधार से ग्रहण करता था। भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना तक

किसी-न-किसी रूप में यही व्यवस्था चलती रही। अंग्रेजी-शासन का भारत पर पहला प्रभाव यह पड़ा कि यहाँ सत्ता के वितरण का यह स्वरूप—राज-प्रभुत्व का यह आधार—समाप्त हो गया और इंग्लैंड की भाँति एक अति-केन्द्रित शासन व्यवस्था इस देश पर भी थोप दी गई। इसका देश की सारी व्यवस्था पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य था।

भारतीय शासन व्यवस्था के इस आधार को अंग्रेजी शासकों को भी स्वीकार करना पड़ा था। उनकी विभिन्न जांच-समितियाँ भी इस निष्कर्ष पर ही पहुँची थीं कि भारत के ग्रामवासियों की खुशहाली के लिए, और इस प्रकार सभी भारतवासियों की खुशहाली के लिए—क्योंकि भारत के ६० प्रतिशत निवासी देश के देहातों में ही रहते हैं—पंचायतों की पुनर्स्थापना आवश्यक है। इस बारे में हम पहले काफी लिख चुके हैं, इसलिए इसे यहाँ छोड़ सकते हैं।

गांधीजी पंचायतों के महत्व को शुरू में ही समझ गये थे। इसीलिए उन्होंने ग्रामराज को अपना ध्येय बताया और उसके वास्तविक स्वरूप को सदा सामने रखने की चेष्टा की। गांधीजी का विश्वास था कि पंचायतों को उनका पुराना स्वरूप दिये बिना, और देश के सारे शासनतन्त्र को पंचायती सांचे पर ढाले बिना देश का उद्धार सम्भव नहीं है।

ब्रिटिश राज्य में विभिन्न प्रान्तों में बनी कांग्रेस सरकारों ने गाँव-गाँव में पंचायतें स्थापित कर पंचायतों के पुराने क्रम को फिर से जीवित करने की कोशिश की थी। पर कांग्रेसी मन्त्रिमंडलों के जल्दी भंग हो जाने के कारण वे इस दिशा में बहुत काम

न कर सके। युद्धोपरांत चुनी गई कांग्रेस सरकारों ने इस काम को फिर से शुरू किया। १९४७ में उत्तर प्रदेश में पंचायत राज एक्ट पास किया गया। धीरे-धीरे दूसरे प्रांतों में भी इसी प्रकार के कानून पास किये गये। १५ अगस्त १९४७ को सत्ता के हस्तांतरण और स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद इस कार्य में और भी आसानी हो गई। हाँ, देश के विभाजन के बाद देशव्यापी दंगों के कारण और कुछ अन्य समस्याओं के कारण इस कार्य में कुछ बाधा अवश्य पड़ी।

धीरे-धीरे यह अव्यवस्था भी समाप्त हो गई। दंगे समाप्त हुए और देश में शांति भी फिर से स्थापित हो गई। लेकिन फिर भी जनता की कल्पना के आदर्श राज्य की स्थापना के कोई चिह्न नहीं दिखाई दिये। नौकरशाही को पहले जैसे ही अधिकार प्राप्त थे। लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल पुरानी व्यवस्था के अन्तर्गत ही कार्य कर रहे थे और उन्हें वे शक्तियाँ प्राप्त नहीं थीं कि वे शासनतंत्र को नया रूप देने में सफल हो सकें। रचनात्मक कार्यकर्ताओं की एक बैठक में भाषण देते हुए कांग्रेस के तत्कालीन महामंत्री श्री शंकर-राव देव ने १० अक्टूबर १९४९ को यह बात स्वीकार की थी। उन्होंने कहा था—“यद्यपि यह ठीक है कि आज पण्डित जवाहरलाल नेहरू देश के प्रधानमन्त्री हैं और सभी प्रांतों में आज कांग्रेसी मन्त्रिमंडल सत्तारूढ़ हैं। पर यह भी सत्य है कि उनके नीचे शासन की वही पुरानी मशीन है जो पहले अंग्रेजों के इशारों पर काम करती थी। उन पर वही पुराने अफसर बैठे हैं। हम उन्हें अलहदा नहीं कर सकते—हम ऐसा करने में असमर्थ हैं। देश का शासन चलाना आज एक टूटी-फूटी मोटरगाड़ी को

जबरदस्ती चलाने जैसा ही है।”

इसी समय भारत की संविधान सभा में द्रुतगति से भारत के संविधान का निर्माण हो रहा था। २६ नवम्बर १९४९ को संविधान का निर्माण-कार्य पूर्ण हो गया और २६ जनवरी १९५० को संविधान देश में लागू भी कर दिया गया और हमारा देश एक संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बन गया।

भारत के संविधान के बारे में कई प्रकार के मत प्रकट किये गये हैं और उसकी कई प्रकार से आलोचना की गई है। पर हमारा उनसे कोई खास सरोकार नहीं है। पर इस संविधान ने कुछ बातों को स्पष्ट कर दिया है। संविधान में यह स्पष्ट घोषित किया गया है कि भारत एक कल्याणकारी राज्य होगा। संविधान भारत के नागरिकों को कई मूल अधिकार प्रदान करता है जो किसी भी लोकतन्त्रात्मक देश के नागरिकों के लिए आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त भारत के संविधान के ४०वें अनुच्छेद में पंचायतों के लिए विशेष व्यवधान है। ४०वें अनुच्छेद के अनुसार, “राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए अग्रसर होगा तथा उनको ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।”

कल्याणकारी राज्य की आधारभूत भावना यह होती है कि देश का बच्चा-बच्चा सुख-समृद्धि में रहे। उसे जीने का अधिकार हो और वह अपनी मौलिक आवश्यकताओं से वंचित न रहे। उसके सुख की प्राप्ति की ओर अग्रसर होने के रास्ते में कोई बाधा न हो। नागरिक को बीमारी, अंगहानि और असमर्थता की अवस्था में

उचित उपचार प्राप्त हो सकें और विद्या-अर्जन की सुविधाएँ सभी को उपलब्ध होनी चाहिए। कल्याणकारी राज्य को सफल बनाने के लिए पंचायतों का होना आवश्यक है, क्योंकि पंचायतों को सारी शासन-प्रणाली की बुनियादी इकाई माना गया है और पंचायतों की प्रणाली स्वावलम्बी और लोकतान्त्रिक ग्रामों के समूहों की प्रणाली है। महात्मा गांधी के शब्दों में, “असंख्य ग्रामों को लेकर बने इस संगठन में उत्तरोत्तर प्रबुद्ध और विकासोन्मुख तत्वों का समावेश होता रहेगा। व्यक्ति पंचायत का केन्द्र होगा।...व्यक्ति ग्राम के हितों के लिए अपने को मिटा देने तक के लिए तत्पर रहेगा। इसी प्रकार वह ग्रामसमूहों के लिए भी अपने को न्योछावर कर देने के लिए तैयार रहेगा। व्यक्ति को इकाई मान बनी यह व्यवस्था सजीव होगी। इन व्यक्तियों में निराशा नहीं होगी। ये अत्याचारी नहीं होंगे। ये लोग सदा विनयो होंगे।...व्यक्ति इस व्यवस्था का अविभाज्य अंग होगा।”

हम कह चुके हैं कि द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद देश में हुए ग्राम चुनावों के फलस्वरूप कई प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बन गये थे। संविधान के बनने से पहले ही इन मन्त्रिमण्डलों ने पंचायत राज से संबंधित कानून बनाना शुरू कर दिये थे। इस सिलसिले में हम उत्तर प्रदेश के १९४७ के पंचायत राज एक्ट का भी उल्लेख कर चुके हैं। यह एक्ट कई बातों में प्रांत में पहले से लागू पंचायत एक्ट से भिन्न है। इस एक्ट के द्वारा पहली बार पंचायतों के न्याय सम्बन्धी अधिकारों को पृथक् किया गया। ग्रामवासियों का ग्राम-पंचायत से निकट संबंध स्थापित करने के लिए पंचायती क्षेत्र के सभी वयस्कों को बिना किसी भेदभाव के गांव-सभा का

सदस्य घोषित किया गया । गांव-सभा की वर्ष में कम-से-कम दो बैठक होना आवश्यक माना गया । गांव-सभा की निर्वाचित कार्य-कारिणी 'ग्राम-पंचायत' है । इस तरह की सक्रिय गांव-सभाओं की कार्यकारिणी के सदस्य अपनी पदावधि में शिथिल या निष्क्रिय नहीं हो सकते, क्योंकि उनका अपने निर्वाचकों से लगातार सम्बन्ध बना रहता है । इन संस्थाओं को काफी अधिकार दिये गये । साथ ही उनके कुछ निश्चित कर्तव्य भी निर्धारित किये गये । बाद में इसी प्रकार का कानून बिहार में भी बना । उड़ीसा और मध्यप्रदेश में पंचायत सम्बन्धी कानूनों को संशोधित कर नई परिस्थितियों के अनुरूप करने की कोशिश की गई । लेकिन प्रारम्भिक पंचायतों का ताल्लुका, जिला या प्रांत के साथ कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है । इसलिए उन्हें प्रशासन की आरम्भिक इकाई मानने का प्रश्न पैदा नहीं होता । पर गांधीजी की पंचायत राज की धारणा इससे भिन्न थी । उसमें पंचायत को शासन की वास्तविक इकाई माना गया है जिससे देश के सारे शासनतन्त्र का निर्माण होता है । अमरीकी पत्रकार ड्यूक पियरसन से एक भेंट के दौरान में गांधीजी ने कहा था, "भारत में सात लाख ग्राम हैं । हर ग्राम का संगठन उनके नागरिक की इच्छा से होगा, इस प्रकार देश के ४२ करोड़ के स्थान पर ७ लाख वोट होंगे—अर्थात्, एक ग्राम का एक वोट होगा । चुनावों के द्वारा यही ग्राम अपना जिला-शासन चुनेंगे । यह जिला-शासन एक राष्ट्रपति का चुनाव करेंगे, जो राष्ट्र का मुख्य कार्यकारी होगा ।"

स्पष्ट है कि गांधीजी की यह कल्पना अभी तक बिल्कुल क्रियान्वित नहीं हो सकी है । भारत के संविधान में शासन की स्वा-

यत्त इकाइयों के संगठन की जो बात कही गई है अभी तो वह भी दूर की दीखती है।

पंचायतों की आर्थिक अवस्था

५ अगस्त १९४८ को राजकुमारो अमृतकौर की अध्यक्षता में नई दिल्ली में होनेवाले स्थानीय स्वशासन मन्त्रियों के सम्मेलन में उद्घाटन भाषण देते हुए प्रधान मन्त्री नेहरू ने कहा था— “लोकतन्त्र की किसी भी सच्ची व्यवस्था का आधार स्थानीय स्वशासन ही है और होना भी चाहिए। हमें लोकतन्त्र के बारे में चोटी से ही सोचने की कुछ आदत-सी पड़ गई है और नीचे से लोकतन्त्र के बारे में हम कोई खास सोच विचार नहीं करते। जबतक लोकतन्त्र का इस नीचे के आधार पर निर्माण नहीं किया जायगा वह शिखर पर सफल नहीं होगा।”

लेकिन जैसा कि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं, कि जब तक स्थानीय संस्थाओं की आर्थिक व्यवस्था संतोषजनक न हो, वे सफल नहीं हो सकतीं। ब्रिटिश शासन में पंचायतों तथा अन्य स्थानीय संस्थाओं की आर्थिक अवस्था पर हम पिछले अध्याय में विचार कर चुके हैं। इन संस्थाओं की बुरी वित्तीय परिस्थिति पिछले पृष्ठों से स्पष्ट हो चुकी है। इस परिस्थिति को सुधारने के कुछ प्रस्तावों और सलाह-समितियों का भी हम अध्ययन कर चुके हैं। ब्रिटिश भारत में स्थानीय संस्थाओं की आर्थिक स्थिति पर जो बात लागू होती थी, वह काफी हद तक आज भी लागू होती है। आज भी इस बात को स्वीकार किया जाता है कि इन संस्थाओं की आर्थिक अवस्था संतोषजनक नहीं है, और जबतक इनकी

अवस्था न सुधारी जायगी, वे बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं हो पायंगी। १९४८ के स्थानीय स्वशासन मन्त्रियों के सम्मेलन में भाषण देते हुए स्वाथ्य मन्त्राणी राजकुमारी अमृतकौर ने भी इस बात को स्वीकार किया था। उन्होंने कहा था—“कोई भी संस्था उस समय तक ठीक ढंग से काम नहीं कर सकती कि जब तक उसकी आय के साधन उपयुक्त न हों और उनके कर आदि ठीक तरह से लगाये तथा वसूल न किये जावें।”

सम्मेलन के कार्यक्रम में स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय स्थिति का विषय भी था। इस विषय को दो भागों में विभक्त किया गया था—

१. स्थानीय संस्थाओं की आय केवल वर्तमान साधन तथा उनको उन्नत करने के उपाय क्या हैं ?

२. क्या सरकार स्थानीय संस्थाओं को आर्थिक सहायता दे ? यदि हां, तो किस मात्रा में ?

जब इस प्रश्न पर विचार किया गया तो हरेक प्रान्त के प्रतिनिधि ने अपने-अपने प्रान्त की स्थिति को सामने रखा और स्थानीय संस्थाओं की आर्थिक स्थिति अच्छी करने के उपाय भी सामने रखे। अलग-अलग प्रान्तों की अवस्था भी अलग-अलग थी, इसलिए सम्मेलन ने यह निश्चय किया कि इस प्रश्न पर अधिक जानकारी प्राप्त की जावे। सम्मेलन ने वित्त सम्बन्धी प्रस्ताव में कहा—“यह सम्मेलन स्वीकार करता है कि स्थानीय संस्थाओं के वित्त-साधन आवश्यकता को देखते हुए बहुत कम हैं। सम्मेलन यह भी मानता है कि मौजूदा साधनों का उचित उपयोग भी नहीं किया जाता है। इसके अतिरिक्त कर-निर्धारण दोषपूर्ण है

तथा वसूली पूरी नहीं हो पाती ।

“स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय समस्या की गंभीरता को देखते हुए यह सम्मेलन इस बात की सिफारिश करता है कि केन्द्रीय सरकार एक ऐसी समिति की नियुक्ति करे जो स्थानीय संस्थाओं के वित्त की पूरी तरह से जाँच-पड़ताल करे और उनको उन्नत करने तथा उनके विकास के उपायों के बारे में अपने प्रस्ताव पेश करे ।”

स्थानीय वित्तानुसंधान समिति की रिपोर्ट—

भारत सरकार ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । २ अप्रैल १९४६ को स्वास्थ्य मन्त्रालय ने एक ऐसी समिति का निर्माण किया । इस समिति का नाम स्थानीय वित्तानुसंधान समिति था । इस समिति में अध्यक्ष सहित दस सदस्य थे ।

समिति को निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करना था—

स्थानीय संस्थाओं के वित्त की जाँच-पड़ताल और उसके विकास और उन्नति के लिए सुझाव देना; एतदर्थ—

(क) इस बात की जाँच करना कि क्या स्थानीय संस्थाओं के वित्त-साधन उनकी जिम्मेदारियों को पूरी तरह से निबाहने के लिए काफी हैं ? यदि नहीं तो उन्हें कैसे उठाया जा सकता है ?

(ख) सरकार द्वारा वित्त-सहायता के साधनों की जाँच-पड़ताल ।

(ग) कर-निर्धारण और वसूली की मौजूदा व्यवस्था की जाँच ।

वित्त-साधनों की जाँच के लिए समिति ने भारत में ब्रिटिश राज की स्थापना से लेकर अब तक के स्थानीय संस्थाओं सम्बन्धी

साहित्य का अध्ययन किया। खासकर ब्रिटिश राज में नियुक्त की गई सभी जाँच-समितियों की दस्तावेजों का बारीकी से अध्ययन किया गया। संस्थाओं की वित्तीय रिथिति के बारे में पिछली समितियों और वाइसरायों की रिपोर्टें कई जगह उद्धृत की गई हैं।

अपनी जाँच के दौरान में तो समिति एकबार तो खर्च की बचत करने के लिए स्थानीय संस्थाओं के वर्तमान ढाँचे को बदलने के औचित्य तक पर विचार करने लगी। पर समिति में इस बात पर मतभेद पैदा हो गया कि उसे ऐसा करने का अधिकार है भी या नहीं। इस बारे में भारत सरकार का निर्देश मांगा गया। भारत सरकार ने कहा कि समिति स्थानीय संस्थाओं के वर्तमान ढाँचे के अनुसार ही अपनी सिफारिशें दें। बाद में समिति की जाँच के क्षेत्र पर भी मतभेद पैदा हुआ। इसपर भारत सरकार ने यह निर्देश दिया कि वे भूतपूर्व देशी राज्य, जो भूतपूर्व ब्रिटिश-भारत के प्रान्तों में विलीन हो गये हैं, समिति की जाँच के क्षेत्र में आ जाते हैं; पर केंद्रीय शासन के नीचे के क्षेत्रों तथा भूतपूर्व देशी राज्यों के एकीकरण से बने संघसमिति के जाँच-क्षेत्र में नहीं आते।

समिति ने पंचायतों, जिलाबोर्डों, नगरपालिकाओं आदि सभी स्थानीय संस्थाओं की वित्त समस्याओं पर विचार किया है। इस समिति की पूरी रिपोर्ट बड़ी महत्त्वपूर्ण है। पर हम अपने को पंचायतों की वित्तीय अवस्था तक ही सीमित रखेंगे।

समिति की सभी सिफारिशें एकमत से नहीं हैं। सबसे बड़ा अलग मत श्री आर. के. सिधवा का है। श्री बर्फीवाला ने भी अपना अलग मत दिया है। कुछ अन्य सदस्यों ने भी छोटे-छोटे

भेदसूचक नोट लिखे हैं। पर इसके बावजूद इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्थानीय स्वशासन के सम्बन्ध में यह एक बड़ी महत्वपूर्ण रिपोर्ट है।

वित्त समस्या के इतिहास का हम पिछले अध्याय में अध्ययन कर चुके हैं इसलिए हम उसे यहाँ छोड़ देंगे। हम केवल उन सुझावों को ही लेंगे जो इन सब विषयों का अध्ययन करने के बाद समिति ने दिये हैं।

पंचायतों के सम्बन्ध में वित्तानुसंधान समिति की सिफारिशें रिपोर्ट के २२ वें अध्याय में हैं। नीचे हम ये सिफारिशें पाठकों के अध्ययन के लिए दे रहे हैं।

मद्रास

इस राज्य में चार कर अनिवार्य हैं। (१) भवन कर, (२) यान कर, (३) व्यवसाय कर तथा (४) सम्पत्ति हस्तांतरण कर।

१. भवन कर—यह छमाही लिया जाता है। इसकी उच्चतम तथा न्यूनतम मात्रा निश्चित है। यह भवन के मूल्य अथवा संभावित वार्षिक किराये पर अथवा अन्य विनिहित आधारों पर लगाया जा सकता है। कच्ची भोंपड़ियाँ कर से मुक्त हैं।

२. व्यवसाय कर—यह कर व्यवसायों पर लिया जाता है और उन सब व्यक्तियों से लिया जाता है जो छह मास में कम-से-कम ६० दिन उस इलाके में रहते हों।

३. यान कर—यह कर मोटरकारों को छोड़ अन्य यानों

पर जो गांव में प्रयुक्त होते हैं, लिया जाता है ।

४. सम्पत्ति हस्तांतरण कर—यह सम्पत्ति के हस्तांतरण पर ५% के दर से लिया जाता है ।

राज्य सरकार की अनुमति से लगान पर तीन पाई प्रति रुपया कर लगाया जा सकता है । पुलों आदि के लिए धन-संग्रह करने के लिए भूमि पर एक और कर लगाया जा सकता है । इसके अतिरिक्त वाणिज्य उपज के क्रय-विक्रय, ग्राम स्थानों के इस्तेमाल, यान के अड्डों, कसाईखानों, आदि पर भी पंचायत फीस वसूल कर सकती है ।

इन आय के साधनों के अतिरिक्त,

- (१) पंचायतें जिला बोर्डों द्वारा लगाई स्वाई का चौथाई भाग ले सकती है ।
- (२) मालगुजारी का $12\frac{1}{2}$ प्रतिशत भाग राज्य सरकार पंचायतों को अनुदान के रूप देने के लिए पृथक् रखती है ।
- (३) जिला बोर्डों के द्वारा लगाया गया यात्री कर भी पंचायतों को मिलता है ।
- (४) मद्रास स्वास्थ्य अधिनियम के अन्तर्गत समस्त करों की आय पंचायतों को मिलती है ।
- (५) पंचायतों द्वारा प्राप्त न्याय सम्बन्धी फीसों व जूमानों का $\frac{9}{10}$ भाग और इसके अतिरिक्त जिला-बोर्डों से हाटों, मण्डियों, पत्तनों आदि से प्राप्त आय का भाग पंचायतों को मिलता है ।

बम्बई

. भवन कर—(क) भवन के मूल्य पर आठ आने प्रति १००

रुपये की दर तक एक ही बार ।

(ख) सम्भावित सालाना किराये का १५% तक ।

२. यात्री कर— छह आने प्रति यात्री तक ।

३. मेलों तथा (क) स्टालों व दुकानों पर पहले ६ वर्ग फुट पर
त्योहारों पर चार आने और हर अगले ६ वर्ग फुट पर
कर— २ पैसे प्रति दिन ।

(ख) सिनेमा, सरकस आदि पर ५० रु० प्रति
एकड़ की दर से कर ।

४. बिक्री कर—(क) यदि प्लाट के क्षेत्रफल पर हो तो ३ (क)
के अनुसार ।

(ख) यदि बेची गई वस्तुओं के आधार पर हो तो—
सब्जी अनाज अन्य वस्तुएँ

प्रति टोकरी—)॥

प्रति बोरी— -) =) =)

प्रति छकड़ा १) १) १)

५—चुंगी—

पक्की ईंटें—२ रुपये प्रति हजार

चादर,लोहा व टाइल—३=) प्रति १०० रु०

सीमेंट— , ,

रेत तथा अन्य सामान—, ,

इनके अतिरिक्त हर पंचायत को सरकार मालगुजारी का २५% अथवा स्वाई का २५%—जो भी गत वर्ष अधिक प्राप्त हुआ हो—देती है । इसके अतिरिक्त सरकार पंचायत को मंत्री के वेतन का ७५% तथा अन्य कर्मचारियों के भत्तों का ५०%, और जनस्वास्थ्य की योजनाओं पर ६०% तक अनुदान देती है । खाद आदि

बेचने से भी पंचायतों को अतिरिक्त आय होती है ।

पश्चिमी बंगाल

बंगाल में यूनियन रेट नामक केवल एक ही कर आवश्यक तथा अनिवार्य है । यह भवनों के मालिकों से सम्पत्ति के आधार पर प्राप्त किया जाता है । यदि यह कर कम समझा जावे त बंगाल ग्राम स्वराज्य एक्ट के अंतर्गत जिलाधीश अधिक कर भी नियोजित कर सकता है । इसके अतिरिक्त वे सब रकमों, जो जुर्माने, फीस, चन्दे तथा दान आदि के रूप में प्राप्त हों, वे भी पंचायत की आय में वृद्धि करती हैं । इनके अतिरिक्त यूनियन बोर्डों के भवनों का किराया, व्यापार व व्यवसाय करने के लिए लाईसेंस पर फीस, जिला बोर्ड के अनुदान आदि से भी पंचायतों को आय होती है ।

उत्तर प्रदेश

इस प्रदेश में कोई भी कर आवश्यक तथा अनिवार्य नहीं है । परन्तु जो कर यहाँ लगाये जा सकते हैं वे निम्न हैं—

१. (क) काश्तकार पर सीर भूमि के लगान पर प्रति रुपया पर एक आने का कर ।

(ख) मालिक पर लगान पर दो पैसा प्रति रुपया का कर ।

(ग) संभावित लगान के आधार पर सीर तथा खुदकाश्त भूमि के लगान पर प्रति रुपया एक आना कर ।

इन सभी करों का एक साथ लगाया जाना आवश्यक है, और यह ऊपर लिखी ऊच्चतम मात्रा के अनुपात में लगाया जाता है ।

२. व्यवसाय तथा व्यापार पर विनिहित मात्रा में कर ।

इसके अतिरिक्त कपड़ा व खांड बेचनेवालों तथा अन्य व्यापार करनेवालों पर उनकी वार्षिक आय के आधार पर पंचायत कर लगा सकती है। इन करों की दरों की सीमा राज्य सरकार निर्धारित करती है।

३. उपरोक्त कोई कर न देनेवालों पर राज्य द्वारा निश्चित सीमाओं के भीतर भवन कर लगाया जा सकता है। जिलाधीश यदि आज्ञा दे दे तो जिला बोर्ड को स्थानीय कर (लोकल रेट) में से विनिहित भाग देना पड़ता है।

४. जुर्माने, फीस, तथा राजीनामों से प्राप्त रकमें।

५. जिला बोर्ड तथा सरकार से प्राप्त अनुदान।

६. नजूल सम्पत्ति के किराये का विनिहित भाग।

७. दान-चन्दे आदि से प्राप्त रकम।

८. खाद आदि के विक्रय से हुई आय।

पंजाब

यहां कोई कर अनिवार्य नहीं है। पंचायतों को जिन करों को लगाने का अधिकार है, वे भी राज्य सरकार की अनुमति से ही लगाये जा सकते हैं। ये कर निम्न हैं—

(१) चूल्हा कर—मजदूरों पर १) रु० प्रति चूल्हा प्रति वर्ष।

कारीगरों पर २) रुपया " " " "

काश्तकारों पर ३ रुपया " " " "

मालिकों तथा दुकानदारों पर ५) रु० " " " "

- (२) व्यवसाय कर—दुकानदारों पर ५) रु० प्रति वर्ष । परन्तु यह ८) रु० से अधिक नहीं हो सकता ।
- (३) पशु कर—ग्रामतौर पर खच्चरों पर २) रु० प्रति वर्ष के दर से लगाया जाता है ।
- (४) गत वर्ष के करों तथा फीसों आदि के बराबर सरकारी अनुदान ।
- (५) पंचायत पुस्तकालयों के लिए तथा अन्य कार्यों के लिए फीसों आदि की घाटा पूर्ति हेतु अन्य अनुदान ।

बिहार

इस राज्य में दो कर अनिवार्य हैं—

- (१) श्रम कर—हर स्वस्थ वयस्क को विनिहित दिनों के लिए श्रम-दान करना पड़ता है । १२ श्रम इकाइयों से अधिक किसी को काम नहीं दिया जा सकता । जो श्रमदान न करना चाहें वे बदले में नकद रकम दे सकते हैं ।
- (२) अचल सम्पत्ति पर कर—यह कर अचल सम्पत्ति के मालिकों पर विनिहित मात्रा में लगाया जाता है ।
- (३) ऐच्छिक कर—
 - (क) व्यापारियों, दलालों, एजेण्टों तथा डंडीदारों पर लाय-सेंस फीस ।
 - (ख) कृषि तथा व्यापार को छोड़ अन्य व्यवसायों पर कर ।
 - (ग) यानों तथा भाड़े पर चलाये जानेवाले पशुओं पर कर ।
 - (घ) मण्डियों में वस्तुओं की बिक्री पर कर ।

(ङ) गाँवों में पशुओं की बिक्री पर रजिस्ट्री फीस ।

(च) धर्मशालाओं, सरायों, डाक बंगलों आदि के इस्तेमाल की फीस ।

जल, पाखानों, प्रकाश तथा मल-निकास पर फीस तभी लगाई जा सकती है कि जब पंचायतें यह सुविधाएँ प्रदान कर रही हों ।

(छ) पंचायत क्षेत्र में यात्रियों से यात्री-कर ।

(ज) पंचायत के स्वामित्व की भूमि, भवनों तथा अन्य स्थानों की आय ।

(ग) सरकार द्वारा वसूल किये गये करों का भाग ।

उड़ीसा

उड़ीसा में अनिवार्य कर केवल अचल सम्पत्ति के मालिकों पर ही लगता है । यदि कर देने वाला निर्धन हो तो पंचायत कर को कम कर सकती है या उसे कर से छूट भी दे सकती है ।

यहाँ भी दलालों, एजेण्टों तथा डंडीदारों से लायसेंस फीस ली जाती है । इनके अतिरिक्त पंचायत कुछ अन्य कर या शुल्क भी लगा सकती है, यथा—भाड़े के पशुओं पर कर, पंचायती भूमि का उपयोग करने वालों से किराया, पशुओं तथा वस्तुओं की बिक्री पर शुल्क तथा उनकी रजिस्ट्री की फीस, पंचायती क्षेत्र के कसाईखानों से आय, सरायों, धर्मशालाओं आदि का किराया, आदि ।

पंचायतों को १८ से ५० वर्ष की आयु के स्वस्थ पुरुषों पर श्रम कर लगाने का भी अधिकार है जिसके लिए वर्ष में चार

दिन तय कर दिये जाते हैं। पर लगातार दो दिन से अधिक काम नहीं लिया जा सकता।

फिर न्याय सम्बन्धी जुमनि, फीस व दण्ड, खाद आदि कूड़ा-कर्कट के बेचने से हुई आय, पंचायत के अधिकार में दी गई राज्य की सम्पत्ति से प्राप्त आय, जिला बोर्ड तथा सरकार से प्राप्त अनुदान तथा लोकल रेट का एक तिहाई भी ग्राम फंड में ही जमा होते हैं।

मध्य प्रदेश

अनिवार्य कर निम्न हैं—

- (१) भवनों तथा कृषि के अतिरिक्त अन्य भूमि पर कर—यह कर सम्पत्ति पर कब्जा रखनेवालों तथा उनके न होने पर सम्पत्तिके मालिकों से निश्चित न्यूनतम मात्रा की सीमा में प्राप्त किया जाता है।
- (२) लायसेंस फीस—क्षेत्र में हर कमीशन एजेंट तथा डंडीदार को निश्चित फीस देकर लायसेंस लेना पड़ता है।
- (३) व्यवसाय कर—निश्चित व्यवसायों का अनुसरण करने वालों पर विनिहित दर से लगाया जाता है।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित ऐच्छिक कर भी लगाये जा सकते हैं—

- (१) पंचायत क्षेत्र में बेचने के लिए माल चानेवाले यानों, गाड़ियों, भार ढोनेवाले पशुओं तथा कुलियों पर कर।
- (२) वस्तुओं की बिक्री पर फीस तथा पंचायत की भूमि में बेचे जाने के लिए लाये पशुओं की रजिस्ट्रेशन फीस।

- (३) सरायों, धर्मशालाओं, विश्रामगृहों, कसाईखानों आदि का किराया ।
- (४) पानी पर शुल्क, पाखानों की सफाई, प्रकाश तथा नालियों पर कर, बशर्ते कि पंचायत ये सुविधाएँ दे ।
- (५) पशुओं के मालिकों से कर ।
- (६) राज्य सरकार की स्वीकृति से लगाये गये अन्य कर तथा फ़ीस आदि ।

श्रमकर—पंचायतों को निर्माण कार्य के लिए ग्रामवासियों से श्रम देने की माँग करने का अधिकार है । पर कोई व्यक्ति अपनी एवज में अन्य व्यक्ति से श्रम दिलवा सकता है ।

इसके अतिरिक्त पंचायतों को मालगुजारी पर दो पैसा प्रति रुपया मिलता है । अनाज गोदामों तथा सरकारी अनुदानों से भी उन्हें आय होती है ।

आसाम

इस राज्य में कोई अनिवार्य कर नहीं है, पर निम्नलिखित ऐच्छिक कर लगाये जाते हैं—

- (१) मालगुजारी पर पट्टेदारों से एक आना प्रति रुपया कर ।
- (२) भूमि के कब्जेदारों पर एक आना प्रति बीघा कर ।
- (३) कृषिविहीन, परन्तु कृषि योग्य, भूमि पर कर ।
- (४) भवनों पर विनिहित मात्रा में कर ।
- (५) विवाह पर कर, सायकिल तथा गाड़ियों पर विनिहित मात्रा में कर ।
- (६) राज्य की अनुमति से कोई अन्य कर ।

श्रमकर—पंचायत को श्रमकर लगाने का भी अधिकार दिया गया है जो स्वस्थ पुरुषों पर ही लगाया जा सकता है। यदि कोई स्वयंश्रम न करे तो उसे उसी काल के लिए दुगुनी मजदूरी देनी पड़ेगी।

इसके अतिरिक्त आय के निम्नलिखित साधन भी हैं—

- (१) न्याय सम्बन्धी फीस व जुर्माने।
- (२) सब-डिवीजनल विकास फंड के अनुदान।
- (३) सरकार तथा अन्य स्रोतों से अनुदान।
- (४) जिन परमिटों के सम्बन्ध में उन्हें नियमों तथा उपनियमों के अन्तर्गत अधिकार प्राप्त हैं, उन पर फीस।

वित्तानुसंधान समिति की सिफारिशें

समिति की राय में उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंचायतों की आय के मुख्यतः दो साधन हैं—

१. पंचायतों द्वारा खुद प्राप्त की गई आय।
२. सरकार तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त अनुदान।

पंचायतों को अपने साधनों से होनेवाली आय के बारे में समिति का मत है कि उन्हें निम्नलिखित दो अनिवार्य कर लगाने चाहियें—

१. भवन तथा चूल्हा कर अथवा हैसियत या सम्पत्ति कर।
२. सफाई-स्वास्थ्य सम्बन्धी कर।

अपनी आवश्यकताओं तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार पंचायतें और कर भी लगा सकती हैं। श्रम के लिए कोई मजदूरी नहीं होनी चाहिये—यदि कोई व्यक्ति इच्छापूर्वक श्रम करना चाहे तो कर सकता है, परन्तु जो ऐसा न कर सके, उसको

एवजी देने की सुविधा दी जानी चाहिये । इसके लिए कोई दंड नहीं होना चाहिये ।

कई पंचायतों की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं होती । इस प्रकार की पंचायतों को, समिति की राय में, अन्य तरीकों से आर्थिक सहायता का दिया जाना अच्छा होगा । ये तरीके हैं— मालगुजारी का १५% भाग तथा सम्पत्ति के हस्तांतरण पर कुछ फीस आदि । इस तरह से प्राप्त रकम पंचायतों के कोष में जानी चाहिये ।

जहाँ तक पंचायतों की प्रारम्भिक शिक्षा की जिम्मेदारी का सम्बन्ध है उन्हें उसी ढंग से अनुदान मिलने चाहिये जैसे कि स्थानीय स्वशासन की अन्य संस्थाओं को दिये जाते हैं ।

इसके अतिरिक्त पंचायतों को इस प्रकार सहायता दी जानी चाहिए कि पंचायत कर्मचारियों के वेतन का सरकार कम-से-कम ५५% दे, जैसा कि बम्बई में होता है । जहाँ सरकार पंचायतों को चौकीदार, दफादार आदि रखने के लिए बाध्य करती है वहाँ उनका पूरा वेतन सरकार को देना चाहिये । पंचायत राज के भीतर आनेवाली सब सरकारी जगहें पंचायताधीन की जायें । इनका हस्तांतरण राज्य की अनुमति से होना चाहिये । ग्राम पंचायतों को मालगुजारी इकट्ठी करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिये और कसाईखानों, घाटों आदि अन्य साधनों से प्राप्त आय से पंचायतों को अपने निर्माण कार्य में सहायता मिलनी चाहिये । सहकारी खेती, गोसदन तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य करने में पंचायतों को प्रोत्साहन देना चाहिये ।

स्थानीय वित्तानुसंधान समिति की रिपोर्ट से यह भी सिद्ध

हो जाता है कि स्थानीय स्वशासन-संस्थाओं के पास वित्त की इतनी कमी है कि वे अपना कार्य चलाने तथा अपनी जिम्मेदारियां निभाने में असमर्थ हो रही हैं और केवल स्थानीय करों से ही उनके लिए वांछित मात्रा में धन जुटाना संभव नहीं है। हमारे ग्राम्य-देश में जनता की कर देने की शक्ति बहुत कम है। सन् १९४८ के बाद सन् १९५४ में भारत के स्थानीय स्वशासन मंत्रियों का सम्मेलन हुआ। दोनों सम्मेलनों में केन्द्र से ही सहायता प्राप्त करने की बात दुहराई गई। केन्द्र ने राज्यों से अपनी सहायता आप करने के लिए कहा। पर इस प्रकार से तो समस्या हल नहीं हो सकती। इसका मुख्य कारण यह है कि अभी तक पंचायतें शासन की प्रारम्भिक इकाई नहीं बन सकी हैं। आज केन्द्र व राज्य दोनों से अनुदान लेने की बात होती है। साथ ही यह भी ठीक है कि जो कर केन्द्र व राज्य प्राप्त करते हैं, उनमें से अधिकांश मूलतः पंचायतों के ही हैं और यदि शासनिक कार्यों में पंचायतें राज्य व केन्द्र के कार्यों में हाथ बँटाती हैं तो वर्तमान करों का एक भाग पंचायतों को जाना ही चाहिये। स्वतन्त्रता से पूर्व बड़ौदा व औंध राज्यों की पंचायतों में यही बात होती थी। इन राज्यों ने अपने कार्य काफी मात्रा में पंचायतों को सौंप दिये थे और बदले में राज्य के करों का २५% से भी अधिक भाग उनके हवाले कर दिया जाता था। इस तरह से पंचायतों की वित्तीय समस्या सुलझाने में काफी सहायता मिल सकती है। इसके साथ दूसरा तरीका है पंचायती खेत व पंचायती फार्म। इनसे पंचायतों को अपने सामान्य कार्यों के लिए काफी धन मिल सकता है। यह साधन वित्त समस्या को हल करने के साथ-साथ स्वालम्बन तथा

आत्मनिर्भरता की भावनाओं को भी जाग्रत तथा पुष्ट करेगा ।

स्थानीय वित्तानुसंधान की रिपोर्ट में एक जगह सहकारी खेती तथा इसी प्रकार के अन्य कार्यों को भी पंचायतों की आय का एक साधन बताया गया है । वित्तानुसंधान समिति के इस प्रस्ताव पर विचार करते हुए स्थानीय स्वशासन मन्त्रियों के सम्मेलन ने यह ठीक ही निश्चय किया कि सहकारिता तथा पंचायत के कर्तव्यों व कार्यों के क्षेत्र लिखित होने चाहियें और आर्थिक उत्तरदायित्व के कार्य सहकारिता के क्षेत्र में ही रहने चाहियें । इसमें इतना अवश्य हो सकता है कि पंचायती क्षेत्र की हर सहकारी सभा अपनी आय से प्रतिवर्ष एक निश्चित अनुपात में विकास के लिए पंचायत को ग्राम फंड में रकम दे । इससे एक तरफ तो पंचायत सहकारिता को प्रोत्साहन देने में अपना भी लाभ देखेगी और दूसरे सहकारी सभा के क्षेत्र में हस्तक्षेप भी नहीं कर पायेगी ।

कर जाँच समिति की रिपोर्ट

१ अप्रैल १९५३ को केन्द्रीय वित्त मन्त्रालय ने कर पद्धति के बारे में पूरी जाँच-पड़ताल करने के लिए एक कर जाँच समिति (टैक्जेशन इन्क्वायरी कमेटी) की स्थापना की घोषणा की । समिति की स्थापना का उद्देश्य वित्त मन्त्रालय के अनुसार “कर-पद्धति का पूरा अनुसंधान करना है । इसी प्रकार की एक जाँच-समिति इसी प्रकार की तहकीकात करने के लिए ३० वर्ष पूर्व भी नियुक्त की गई थी । पर १९२५ और १९५३ की परिस्थितियों में बहुत अन्तर आ चुका है । इसलिए एक नई जाँच होना आवश्यक है । सरकार यद्यपि सन् १९४८ से ही एक ऐसी समिति

नियुक्त करने की सोच रही थी, पर विभाजन तथा वैधानिक परिवर्तनों के कारण पहले ऐसा नहीं किया जा सका। यह समिति देश की कर-व्यवस्था के बारे में क्रमिक तथा पूरी तहकीकात करेगी।”

अध्यक्ष सहित समिति के छह सदस्य थे। भूतपूर्व केन्द्रीय वित्त मंत्री डा० जान मथाई समिति के अध्यक्ष थे। दिल्ली के भूत-पूर्व आय कर आयुक्त सरदार इन्द्रजीतसिंह समिति के मंत्री थे। समिति को निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करना था—

- (१) केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय करों का जनता के विभिन्न वर्गों तथा विभिन्न राज्यों पर प्रभाव।
- (२) (क) वर्तमान केन्द्रीय, प्रादेशिक तथा स्थानीय कर पद्धति के विकास की योजना।
(ख) जनता की आमदनी तथा धन की असमानता को दूर करने के तरीके।
- (३) आय कर लगाने का तरीका तथा उसकी सीमाएँ, और उसका उत्पादक उद्योगों पर प्रभाव।
- (४) कर का मुद्रास्फीति तथा उपस्फीति के उपकरण के रूप में परीक्षण।
- (५) अन्य संबंधित बातों पर विचार।
- (६) (क) वर्तमान कर पद्धति में आवश्यक सुधारों, तथा
(ख) कर के नये स्रोतों के संबंध में विशेष रूप से सिफारिशें करना।

समिति ने १६ नवम्बर १९५३ से शहादतें लेना शुरू कीं। सुनवाई के दौरान में करों की वर्तमान व्यवस्था की अच्छी तरह

जाँच-पड़ताल की गई। सारी जाँच के बाद समिति ने अपनी सिफारिशें दीं। पंचायती वित्त के बारे में समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें दीं—

- (१) पंचायतों के विकास में यह बात सहायक होगी कि उनका संगठन करने के तुरंत बाद कर न लगाये जायें। पंचायतों के प्रारम्भिक विकास की अवस्था में उन्हें अपने कार्य के लिए आवश्यक वित्त का राज्य सरकार की ओर से दिया जाना ही अधिक उचित है।
- (२) धीरे-धीरे पंचायतों को कर लगाने के लिए तैयार करना चाहिये। इसके लिए उन्हें बाध्य भी किया जा सकता है। पर पंचायतों का कर लगाने का क्षेत्र सीमित ही रहना चाहिये। इसके अलावा उनकी कर लगाने की पद्धति सीधी-सादी होनी चाहिये। विवाह, जल, गाड़ी, पशु आदि पर लगाये गये छोटे-छोटे कर बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होते। समिति के प्रस्तावानुसार नीचे लिखे चार कर अधिक उप-योगी होंगे—

१. साधारण सम्पत्ति कर।
२. सेवा कर।
३. भूमि पर उप-कर (स्वाई)।
४. सम्पत्ति हस्तांतरण कर।

इनके अतिरिक्त पंचायत की परिस्थितियों के अनुसार यानों, व्यवसायों तथा मेले-तमाशों पर भी कर लगाये जा सकते हैं।

कर जाँच समिति के प्रस्तावों पर स्थानीय स्वशासन

मंत्रियों के सम्मेलन में विचार किया गया। राज्यों का कथन था कि जनता पर करों का भारी बोझ है और वह और अधिक करों का बोझ नहीं सह सकती। इसलिए पंचायतों को नये कर नहीं लगाने चाहियें। लेकिन राज्यों के पास भी इतना रुपया नहीं है कि वे पंचायतों को अनुदान दे सकें। अतः पंचायतों को वित्त-सहायता देने के लिए राज्यों ने केन्द्र से सहायक अनुदान की माँग की।

स्पष्ट है कि ऐसी दशा में पंचायतों के लिए आवश्यक वित्त-सहायता आसानी से नहीं जुटाई जा सकती। लेखक का मत है कि इसका एकमात्र तरीका यही है कि पंचायतों को सुपुर्द किये गये कामों के स्वरूप के अनुसार राज्य तथा केन्द्र अपने उन करों का, जिन्हें वे पंचायती क्षेत्र से प्राप्त करते हैं, एक भाग पंचायतों को दें। साथ ही, वित्तानुसंधान समिति की सिफारिशों के अनुसार पंचायती क्षेत्रों में सहकारी फार्मों तथा पंचायती खेतों की स्थापना करके भी आय का एक अन्य साधन निकाला जा सकता है। इसके अतिरिक्त सहकारी सभाओं का विकास फण्ड भी पंचायत की आय का एक अन्य आवश्यक तथा उपयोगी साधन हो सकता है।

पंचायत राज की वास्तविक धारणा के अनुसार स्थानीय स्वशासन की सभी संस्थाएँ पंचायत के अधिक्षेत्र में ही आ जाती हैं। नगर, तहसील तथा जिला पंचायतों की कर-पद्धति तथा संगठन आदि के बारे में उपयुक्त स्थानों पर विचार किया जायेगा।

कांग्रेस की पंचायत समिति की रिपोर्ट

पंचायतों के विकास का अध्ययन करते समय हम देख

चुके हैं कि १९४७ तक देश के सभी राज्यों में पंचायत राज सम्बन्धी कानून बन चुके थे । भारत के सभी प्रमुख राजनैतिक दल भी पंचायतों के विरुद्ध नहीं हैं । आचार्य विनोबा भावे ने पंचायत को सर्वोदय समाज की आधार शिला बताया है । कांग्रेस के कार्यक्रम में पंचायतों को सदा से एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । सत्तारूढ़ दल होने के नाते पंचायतों की प्रगति से कांग्रेस का सम्बन्ध और भी ज्यादा बढ़ जाता है । इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि कांग्रेस पंचायतों की प्रगति का मूल्यांकन करे और देश भर में उनको समता प्रदान करे और ऐसे कदम उठाये कि पंचायतें हमारे गणतान्त्रिक शासन की वास्तविक इकाइयाँ बन सकें ।

पंचायतों की प्रगति की ओर कांग्रेस ने सदा काफ़ी ध्यान दिया है । २३-२४ मई १९५४ को नई दिल्ली में होनेवाली कांग्रेस कार्य समिति की बैठक में पंचायतों की प्रगति पर विचार-विमर्श हुआ । इस सम्बन्ध में पास हुए प्रस्ताव में कहा गया है— “कांग्रेस कार्य समिति को भारत के विभिन्न भागों में पंचायत पद्धति के उत्तरोत्तर विकास को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई है । यह न सिर्फ़ भारत की पुरानी परम्पराओं के अनुकूल ही बल्कि वर्तमान स्थिति के भी उपयुक्त है । आधुनिक राज्य शनैः शनैः स्वभावतः केन्द्रीकरण की ओर अग्रसर होने लगते हैं । इस प्रवृत्ति में सन्तुलन लाने के लिए स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं का विकास किया जाना चाहिये जिससे देशवासी स्वयं देश के प्रशासन में तथा सामाजिक, आर्थिक व न्यायिक क्षेत्रों में भाग ले सकें । इसका सबसे अच्छा उपाय यही हो

सकता है कि भारत के गाँवों में पंचायतों का विकास किया जाय । इन पंचायतों को प्रशासनिक तथा न्यायिक—दोनों ही तरह के—काम करने चाहियें ।

“कार्य समिति विशेषतः न्याय पंचायतों की स्थापना का स्वागत करती है जिनसे अदालतों का भार कम होगा तथा काफी संख्या में छोटे-छोटे मामलों का मौकों पर ही फैसला हो जाने से देशवासियों को सस्ता एवं शीघ्र न्याय मिल सकेगा ।

“स्थानीय परिस्थितियों एवं परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए सम्पूर्ण देश में इस प्रकार की पंचायतों का विकास किया जाना चाहिये । ये पंचायतें जाति तथा धर्म का भेद-भाव किये बिना सम्बन्धित क्षेत्र का पूर्ण प्रतिनिधान करेंगी ।”

• बैठक में यह भी निश्चय किया गया कि देश के सारे राज्यों में पंचायतों के चलन का अध्ययन किया जाये । एतदर्थ एक समिति की नियुक्ति की गई । इस समिति के छह सदस्य थे ।

समिति का कार्य इस प्रस्ताव के अनुसार यह था कि वह “इस प्रश्न के सब पहलुओं पर विचार करे और यह भी ध्यान रखे कि विभिन्न प्रदेशों में पंचायतें किस तरह काम कर रही हैं । अजमेर में होनेवाली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक के अवसर पर कार्य समिति की बैठक में समिति अपनी रिपोर्ट पेश करे ।”

समिति ने एक प्रश्नावली बनाकर देश के सब राज्यों तथा प्रदेश कांग्रेस कमेटियों को भेजी । समिति ने अपनी पहली बैठक में मूलभूत तथा व्यवहारिक समस्याओं का निर्णय किया, जो ये हैं —

- (१) शान्तिपूर्ण रीति से सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्ति लाने में प्रभावशाली साधन के रूप में ग्राम पंचायतों का स्थान ।
- (२) लोक हितकारी राज्य की स्थापना के लिए सामाजिक एवं आर्थिक शक्ति के व्यापक विकेन्द्रीकरण में ग्राम पंचायतों का स्थान ।
- (३) प्राचीन भारतीय परम्पराओं के अनुरूप “सम्मिलित प्रजा-तंत्र” के आदर्श के रूप में ग्राम पंचायतों का विकास—पंच परमेश्वर का आदर्श ।
- (४) दलबन्दी से दूर सामुदायिक संगठन के रूप में ग्राम पंचायतें ।
- (५) ग्राम पंचायतों के कार्य में सर्व सम्मति का सिद्धान्त—एकमत से चुनी जानेवाली पंचायतों को अन्य पंचायतों के मुकाबले में अधिक अधिकारों का दिया जाना ।
- (६) पंचायतों की निर्वाचन पद्धति—वयस्क मताधिकार—प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष चुनाव—हाथ दिखाकर मतदान—या प्राचीन भारत में प्रचलित पर्ची द्वारा प्रश्नों के तय करने की पद्धति का विकास करना ।
- (७) पंचायत संगठन की इकाई—एक गाँव या ग्राम-समूह अथवा जनसंख्या के आधार पर ।
- (८) पंचायत तथा राज्य के बीच की मध्यवर्ती संस्थाएँ ।
- (९) राष्ट्रीय आर्थिक आयोजन में ग्राम पंचायतों का स्थान—दूसरी पंचवर्षीय योजना में पंचायतों के प्रभावशाली योग को सुनिश्चित करने के उपाय—सामुदायिक योजनाओं एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं में पंचायतों का महत्त्व ।

व्यवहारिक समस्याएँ ये हैं —

- (१) प्रशासनिक अथवा नगरपालिका-कार्य ।
- (२) न्याय सम्बन्धी कार्य—न्याय पंचायत के निर्णयों को गाँव की दलबंदी से स्वतंत्र रखना ।•
- (३) आर्थिक कार्य, विशेषकर गाँव में सहकारी संस्थाओं तथा सहकारी प्रणाली का विकास तथा सहकारी खेती से सम्बन्धित कार्य ।
- (४) पंचायतों की आय के साधन—लगान की उगाही का प्रतिशत भाग—सार्वजनिक भूमि, हाट-बाजार, मेला-स्थान, नदी, घाट इत्यादि की व्यवस्था से आय; नकद, जिन्स तथा श्रम के रूप में दान अथवा चन्दा ।
- (५) कर्मचारी प्रशिक्षण ।

समिति ने इन सब प्रश्नों का भली प्रकार अध्ययन किया और फिर देश भर से प्राप्त सूचना के आधार पर अपनी रिपोर्ट तैयार की । प्रश्नों से ही रिपोर्ट का महत्व प्रकट हो जाता है । केन्द्र तथा राज्यों में कांग्रेस का ही शासन होने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इसका उन पर प्रभाव पड़ना और कार्यरूप में परिणित किया जाना निश्चित-सा है ।

इस रिपोर्ट के लेखकों का भी यही मत है कि भारत में पंचायतों का क्रम बहुत प्राचीन है और भारत में राज्य प्रणाली का विकास इन लोकतांत्रिक पंचायतों से ही हुआ है । राजाओं ने सत्ता इन संस्थाओं से ही प्राप्त की । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ पंचायतें किसी विकेन्द्रीकरण के क्रम के फलस्वरूप

नहीं बनीं। वस्तुतः ये पहले बनीं और इनके संगठन द्वारा ही शासन की केन्द्रीय संस्था का निर्माण हुआ। रिपोर्ट में इस निष्कर्ष के आधार पर यह सिफारिश की गई है कि पंचायतें संविधान के निर्देशानुसार शासन की इकाई हों, तथा दलबन्दी से सुरक्षित रखी जायें। यथासंभव उनमें सर्वसम्मति के सिद्धान्त को प्रोत्साहन दिया जाय और न्याय के लिए न्याय पंचायतों का निर्माण पृथक और चुनाव द्वारा ही हो। यह रिपोर्ट पंचायतों, पंचायत विभागों तथा पंचायत राज पद्धति में विशेष आस्था रखनेवालों के अध्ययन के लिए भी पर्याप्त सामग्री उपस्थित करती है। इस रिपोर्ट के अन्तिम निष्कर्ष निम्नलिखित हैं—

पंचायती परम्परा

१. भारत में स्वस्थ और जनतांत्रिक परम्पराओं को स्थापित करने के लिए पंचायत व्यवस्था एक बहुत अच्छा आधार प्रदान करती है। राज्य को इसके विकास को प्रोत्साहित करना चाहिये, ताकि हमारी जनता शासनिक कार्यों में तथा सामुदायिक जीवन के दूसरे सामाजिक, आर्थिक और न्यायिक कार्यों में भाग ले सके।

संविधान और पंचायतें

२. भारतीय संविधान में निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ग्राम पंचायतों को न केवल स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में ही काम करना चाहिये वरन् सामाजिक न्याय को स्थापित करने के लिए और सामुदायिक जीवन के पोषण के लिए भी प्रभावशाली कार्य करना चाहिये ताकि लोगों को अधिकाधिक रोजगार प्राप्त हो सके।

आर्थिक तथा राजनैतिक सत्ताओं का विकेन्द्रीकरण

३. भारतीय संविधान जिन मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित है उनको सम्पूर्ण रूप से तब ही वास्तविक रूप दिया जा सकता है कि जब ग्राम पंचायत संस्थाओं के जरिए आर्थिक और राजनैतिक सत्ता को विकेन्द्रित करने के लिए गम्भीर और क्रमबद्ध प्रयास किया जाये ।

मध्यवर्ती संस्थाओं का पंचायतों द्वारा निर्वहन

४. व्यापक भूमि सुधारों के लागू होने के फलस्वरूप मध्यवर्ती संस्थाएँ समाप्त हो गई हैं । मध्यवर्ती संस्थाएँ पहले ग्रामीण समाज में कुछ उपयोगी कार्य किया करती थीं, यथा, उधार देना, बाजार-हाट का काम, गाँव की आवश्यकतओं की पूर्ति इत्यादि । अब राज्य का कर्तव्य है कि वह ग्राम पंचायतों के माध्यम से इस किस्म की सेवाएँ गाँवों को प्रदान करवाये ।

पंचायतों द्वारा जनतंत्र का विकास

५. ग्राम पंचायतों के विकास से एक ऐसा जनतंत्र विकसित होना चाहिये जो ग्रामीण समुदाय के सब तत्त्वों का प्रतिनिधान कर सके ।

पंचायतें और दलगत नीति

६. ग्राम पंचायतों की सबलता इस बात पर निर्भर होगी कि वे गाँव की जनता में किस हद तक एकता की भावना पैदा कर सकती हैं और ग्रामीण आबादी के विभिन्न तत्त्वों का विश्वास कहाँ तक प्राप्त करती हैं । अतः जहाँ तक संभव हो पंचायतों को दलगत राजनीति से अलग रखना चाहिये ।

सर्व सम्मति से चुनाव

७. ग्राम पंचायतों के चुनावों में सर्वसम्मति से चुनाव करनेवाले सिद्धान्तों को अधिकतम महत्त्व प्रदान करना चाहिये । सर्व सम्मति से चुनाव के सिद्धान्त को प्रोत्साहित करने के लिए वांछनीय होगा कि उन पंचायतों को अधिक शक्ति और अधिकार प्रदान किये जायें जो पंचों को एकमत से चुनती हैं ।

लचीलापन

८. उपर्युक्त बुनियादी सिद्धान्तों से जहाँ तक संभव हो, नहीं भटकना चाहिए, परन्तु यह हमेशा याद रखना चाहिये कि पंचायतों के रोज-ब-रोज के काम के सिलसिले में सारे देश में कोई एक ही कटा-बना क्रम नहीं रखा जा सकता है और इसलिए राज्यों को इस बात की छूट रहनी चाहिये कि वे स्थानीय परम्पराओं, स्थितियों व जरूरतों के मुताबिक अपना निजी ढाँचा विकसित कर सकें ।

बालिग मताधिकार

९. ग्राम पंचायतों का चुनाव बालिग मताधिकार के आधार पर होना चाहिये । ग्राम के सब बालिग मिल कर ग्राम सभा का निर्माण करें । जहाँ यह संख्या बहुत बड़ी हो वहाँ गाँव के प्रत्येक परिवार से एक-एक प्रतिनिधि लेकर ग्राम सभा बनाई जाये । ग्राम सभा द्वारा चुनी हुई ग्राम पंचायत ग्राम सभा की कार्यकारिणी के समान होगी । ग्राम पंचायत के सदस्यों की संख्या ग्राम की आबादी के अनुपात में होगी । सामान्यतः यह पाँच या पाँच का कोई गुणक होना चाहिये ।

चुनाव पद्धति

१०. ग्राम पंचायतों के चुनाव का ढंग जितना सरल हो उतना ही अच्छा है। जिन पंचायतों के चुनाव सर्व सम्मति से हो जाते हैं वहाँ कोई दिक्कत नहीं होती। पर जहाँ सब सदस्यों को सर्व सम्मति प्राप्त न हो सके वहाँ चुनाव गुप्त मतदान द्वारा होने चाहियें। इस चुनाव को गाँव के ही बर्तनों, घड़ों या कनस्तरों इत्यादि का मत डालने के सन्दूक के रूप में प्रयोग करके और सरल बनाया जा सकता है। यदि जरूरी हो तो चुनाव अफसर गाँव सभा के विभिन्न सदस्यों के वोट एक रजिस्टर में अलग कमरे में बैठकर गुप्त रूप से नोट कर ले। पर कमेटी हाथ द्वारा वोट लेने की प्रथा को सदा के लिए वर्जित नहीं करना चाहती और जहाँ ग्राम सभा इस तरीके को ठीक समझे, वहाँ यह अपनाया जा सकता है।

पंचायती क्षेत्र की जनसंख्या

११. ग्राम पंचायत संगठन की प्राथमिक इकाई सामान्यतः १५०० लेकर २००० आबादीवाला एक गाँव होना चाहिये। ऐसी ही पंचायतें ग्रामीण समुदाय की आवश्यकताओं के अनुसार योजना बना सकेंगी और काम कर सकेंगी। वैसे भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न स्थिति है और इस मामले में कोई कठोर योजना ठीक नहीं होगी। जहाँ जरूरत हो वहाँ कुछ छोटे-छोटे गाँवों को मिला कर एक ग्राम पंचायत बनाई जा सकती है।

मध्यवर्ती संस्थाएं

१२. पंचायतों के काम की देखभाल करने के लिए और उनका

एकसूत्रीकरण करने के लिए किसी प्रकार की एक मध्यवर्ती संस्था का होना सहायक हो सकता है। इन मध्यवर्ती संस्थाओं को कुछ कार्यवाहक जिम्मेदारियाँ भी दी जा सकती हैं। ऐसी संस्थाओं का तहसील के स्तर पर बनाना उचित होगा। वैसे जिलों के स्तर पर या अन्य उपयुक्त स्तरों पर भी इन्हें बनाया जा सकता है। ऐसी मध्यवर्ती संस्थाएँ नामज़द नहीं होनी चाहियें। उनका सरपंचों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुनाव होना चाहिये। उनके साथ काम करने के लिए कुछ टेक्निकल विशेषज्ञ साथ रखे जा सकते हैं परन्तु उनको बोट देने का अधिकार नहीं होना चाहिये।

पंचायतों के कार्य

१३. पंचायतों के विभिन्न कार्य होने चाहियें। नगरपालिका-कार्यों में ग्राम की सफाई-सुथराई, गाँव की सड़कों की देख-भाल, ग्रामीण समुदाय के सामान्य उपयोग की इमारतों का बनाना और उनकी मरम्मत, पानी बहाने की नालियों का प्रबन्ध, पीने के पानी का प्रबन्ध, गाँव की सड़कों पर रोशनी, इत्यादि कार्य आ जाते हैं। यदि ज़िला बोर्ड शिक्षा की देख-भाल नहीं करता, तो उस काम को भी पंचायत के सुपुर्द किया जा है। ऐसी दशा से पंचायतों के शैक्षणिक कार्यों की देख-रेख राज्य के शिक्षा विभाग द्वारा होनी चाहिये। कुछ अनिवार्य नगरपालिका कार्यों के अलावा राज्य सरकारें ग्राम पंचायतों की कार्यक्षमता को देख कर, उन्हें कुछ स्वविवेकात्मक दायित्व भी दे सकती हैं।

पंचायती न्याय

१४. अदालती या न्याय पंचायतों की सदस्यता और उनका कार्य ग्राम पंचायतों से अलग होना चाहिये। न्याय पंचायत कुछ गाँवों के बीच, जिनकी जनसंख्या पाँच से छह हजार तक हो और जो लगभग ३ मील की लम्बाई-चौड़ाई में आ जाते हों, होनी चाहिये। प्रत्येक ग्राम सभा को चाहिये कि ग्राम पंचायत का चुनाव करने के साथ वह न्याय पंचायतों में काम करने के लिए भी ५ आदमियों को चुने। इस प्रकार कुछ गाँवों से चुने गये न्याय पंचायतों के सदस्यों की संख्या ३० तक हो सकती है। इस तरह जो न्याय पंचायत चुनी जाती है, उसकी पाँच-पाँच की पीठिका या बेंच एक-के-बाद-एक वाले क्रम से मुकदमों की सुनवाई कर सकती है। जिस गाँव का मामला हो, मुकदमा उसी गाँव में चलना चाहिये। अनावश्यक देरी से बचने के लिए पूरा मामला एक ही बैठक में खतम कर देना चाहिये। गाँव में न्याय को सादा, सस्ता और फौरो करने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि न्याय पंचायतों को दूसरी अदालतों में व्याप्त वातावरण से बचाया जाये। इन न्याय पंचायतों में किसी वकील को पैरवी करने की आज्ञा नहीं होनी चाहिये। प्रत्येक गाँव सभा द्वारा पाँच सदस्यों की जो न्याय पंचायत चुनी जाती है, उसमें कम-से-कम एक हरिजन व एक महिला होनी चाहिये।

योजना और पंचायतें

१५. भारत में योजना तभी सफल हो सकती है जब वह हरेक ग्राम पर आधारित हो। ऐसी ग्राम आधारित योजना में ग्रामों की

पंचायतों का महत्त्वपूर्ण भाग होगा। इस दृष्टिसे पंचवर्षीय योजना में जिस ग्राम विकास परिषद् की चर्चा की गई है, वह ग्राम पंचायत के इर्द-गिर्द ही होनी चाहिये। इससे ग्रामों में एक स्थायी किस्म का नेतृत्व विकसित करने में सहायता मिलेगी और ग्रामीण विकास के सब पहलुओं पर ध्यान दिया जा सकेगा। सामुदायिक योजनाओं तथा राष्ट्रीय विस्तार खण्डों इत्यादि के अफसरों तथा ग्रामीण स्तर के कार्यकर्ताओं को चाहिये कि वे ग्राम-पंचायतों के विकास और वृद्धि में सहायता दें, ताकि वे राष्ट्रीय योजनाओं की पूर्ति के लिए उत्तरोत्तर दायित्व ग्रहण कर सकें।

प्रशिक्षण

१६. कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिए विशेष प्रबन्ध करना चाहिये ताकि वे विकास कार्यक्रमों को उनके सब पहलुओं में पूरा करने के योग्य हो जावें। इससे बेकार नौजवानों को काम भी दिया जा सकेगा। सर्व सेवा संघ, गांधी स्मारक निधि तथा कस्तूरबा गांधी निधि जैसी गैर-सरकारी संस्थाओं का भी सहयोग इस कार्य के लिए लेना चाहिये।

कर प्राप्ति और आय के साधन

१७. पंचायतों को उत्तरोत्तर मालगुजारी वसूल करने का कार्य दिया जाना चाहिये और जितनी रकम वे इकट्ठे करें, उसका १५ से २५ प्रतिशत तक भाग उनको अपना दैनिक कार्य के लिए दे दिया जाना चाहिये। पंचायतों को श्रमकर लगाने का भी अधिकार दिया जाना चाहिये। जहाँतक संभव हो, कोशिश यही करनी चाहिये कि कार्य स्वेच्छा-श्रम द्वारा—

श्रमदान के रूप में—करवाया जाये। यदि कोई व्यक्ति श्रमकर के रूप में श्रम नहीं देना चाहता तो उससे श्रम द्वारा किये जानेवाले कार्य के मूल्य की दुगुनी रकम वसूल करनी चाहिये। गाँव को सामान्य भूमि का प्रबन्ध गाँव पंचा- की आय का तीसरा स्रोत है। पंचायत को कुछ दिनों तक सफ- लतापूर्वक काम कर लेने के बाद ही निम्न प्रकार के कर लगाने का अधिकार दिया जाना चाहिये—

१. अराजियों (भूमि) पर कर।
२. गाड़ी कर।
३. व्यवसाय कर।
४. गाँव में चाय इत्यादि की दुकानों पर कर।
५. हाट, बाजार, मेला, आदि की भूमि के प्रबन्ध से होनेवाली आय।

वर्तमान स्थितियों में यह नितान्त आवश्यक है कि ग्राम पंचायत के कार्यों को चलाने के लिए राज्य द्वारा उन्हें सहायता दी जाये।

सहकारिता और पंचायतें

१८. सहकारी समितियों और ग्राम पंचायतों के कार्यों और उनके संगठनों को एक-दूसरे से अलग रखना कई कारणों से जरूरी है। सहकारी समितियों का कार्यक्षेत्र ग्राम पंचायतों के कार्यक्षेत्र से अधिक व्यापक है। फिर सहकारी समितियाँ जहाँ स्वेच्छा पर आधारित हैं, वहाँ ग्राम पंचायतों की सदस्यता अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त और भी कई कारण हैं। परन्तु ग्राम पंचायतों को सहकारी समितियों के विकास के लिए जनमत का समर्थन प्राप्त करना चाहिये। इसके अतिरिक्त समितियों

को चाहिये कि वे समय-समय पर पंचायतों को अपने काम की रिपोर्ट दिया करें।

कांग्रेस की पंचायत समिति की रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण यही है। समिति के एक सदस्य श्री मालवीय कुछ बातों में इससे भिन्न मत रखते थे। मतभेद की बातों पर उनके अलग सुभाव निम्न हैं—

१. प्राचीन परम्परा का अनुसरण केवल सांस्कृतिक स्रोत तक ही किया जाना चाहिये, उसके आगे नहीं, क्योंकि पहले के मुकाबले में अब परिस्थितियाँ बहुत बदल चुकी हैं।

२. तहसील स्तर पर तहसील व तालुके के नाम से नियंत्रण करनेवाली मध्यवर्ती संस्था होनी चाहिये जिसमें ६ सदस्य तहसील की ग्राम पंचायतों से आयें और ३ जिलाधीश द्वारा तहसील अधिकारियों में से मनोनीत किये जायें।

३. न्याय पंचायतों का समग्र निर्वाचन नहीं होना चाहिये। गाँव पंचायत के निर्वाचित सदस्यों में एक सुनिश्चित अधिकारी द्वारा न्याय-पंचायत के सदस्य नियुक्त कर दिये जाने चाहियें।

४. योजना परिचालन तथा विकास के लिए ग्राम पंचायतों के अतिरिक्त कोई अन्य संस्था या संगठन नहीं होना चाहिये।

उपरिलिखित बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंचायतों का बुनियादी महत्त्व सब स्वीकार करते हैं। एक-न-एक दिन यह संस्था शासन के हर पहलू की वास्तविक इकाई बनेगी। अनुभव के आधार पर यह भी स्वीकार किया जा रहा है कि विभिन्न राज्यों में पंचायतों के कानून तथा उनकी गति विधि में

भी समानता लाई जानी चाहिये ।

पंचायती ढाँचा नौकरशाही ढाँचे से एकदम उल्टा है । इस ढाँचे के स्थापित होते ही नौकरशाही का स्थापित भवन गिर जायगा । यह आशंका नौकरशाहों के उस समुदाय को शंकित कर रही है जिसने आजतक जनता के शोषण में सहायता दी है और जनता के ऊपर रौब और सत्ता कायम रखने में ही अपना अधिकार समझा है । पंचायत की धारणा शासन की धारणा को ही बदल देती है । परन्तु इस धारणा के अनुसार पंचायतों की स्थापना की पहली शर्त है एक मानसिक वातावरण का निर्माण । इसके लिए सबसे आवश्यक कार्य है पंचायती शासन तंत्र में कर्मचारी समुदाय का ऊपर से लेकर नीचे तक प्रशिक्षण । कर्मचारी समुदाय में जबतक पंचायती पद्धति के सिद्धान्तों के लिए श्रद्धा और प्रेम उत्पन्न नहीं होगा तबतक पंचायतों तथा नौकरशाही में मन-मुटाव का रहना स्वाभाविक है । राज्यों और केन्द्रीय शासन को इसकी ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये ।

पंचवर्षीय योजना और पंचायतें

देश के स्वतंत्र होने से सरकार और सत्तारूढ़ दल की जिम्मेदारियाँ और ज्यादा बढ़ गई हैं । स्वतंत्रता के पहले देश के नव-निर्माण की योजना बनाने के लिए कांग्रेस ने एक योजना समिति बनाई थी । परन्तु यह काफ़ी पुरानी बात है । इस बीच में देश में बहुत बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं । परिस्थितियों के बदल जाने के कारण इस योजना की वह उपयोगिता नहीं रही जो पहले थी ।

बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप देश का नव-निर्माण

करने की कई व्यक्तियों ने अपनी-अपनी अलग योजनाएँ सामने रखीं। कई ने तो उनपर अमल करना भी आरंभ कर दिया। आचार्य विनोबा भावे की अध्यक्षता में गांधीवादी विचारकों का एक सम्मेलन वर्धा में हुआ जिसने सर्वोदय समाज को जन्म दिया। सम्मेलन में देश के नव-निर्माण की योजना बनाने के लिए तेरह व्यक्तियों की एक समिति बनाई गई।

३० जनवरी १९५० को इस समिति ने अपनी योजना प्रकाशित कर दी। यह योजना “सर्वोदय योजना” के नाम से प्रसिद्ध है। योजना अहिंसा, सहयोग और स्वावलम्बन की भावनाओं पर आधारित है। इसमें ग्रामों और ग्राम-संस्थाओं के महत्त्व का वास्तविक मूल्यांकन किया गया है क्योंकि समिति की धारणा यह रही है कि भारत जैसे ग्रामों के देश का पुनर्स्थान ग्रामों और ग्रामीणों में आत्म-सम्मान और स्वावलम्बन के पुनर्विकास के बिना संभव नहीं है। योजना का उद्देश्य निम्न उद्धरणों से प्रकट हो जायेगा—

“अहिंसात्मक समाज में उत्पादन व्यवस्था, प्रशासनिक नियंत्रण और राजनैतिक सत्ता का अधिकतम विकेन्द्रीकरण होना चाहिये।

“...शिखर पर शक्तियों के संग्रहण से बचने के लिए और लोकतंत्र को क्रियात्मक बनाने के लिए शिखर से प्रशासन की निम्न इकाइयों तथा गैर-सरकारी अभिकरणों को ज्यादा-से-ज्यादा शक्ति हस्तांतरित करने की कोशिश की जा रही है।

“सरकारी सत्ता से शक्तियों के लिये जाने के बारे में

हमारा रवैया उपरोक्त बातों से भिन्न है। जब कि मौजूदा व्यवस्था में सत्ता शिखर से आधार की ओर जाती है, हमारा मत है कि शक्तियाँ मूलतः प्रशासन की बुनियादी इकाइयों में निहित होनी चाहियें और नीचे से ऊपर की ओर जानी चाहियें।

“स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में उठनेवाली ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों से हम परिचित हैं। हम एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के तत्वावधान में स्वाधीनता और राष्ट्र की अविच्छिन्नता कायम रखने की आवश्यकता का अनुभव करते हैं।

“पर साथ-ही-साथ हम यह भी महसूस करते हैं कि एक ऐसी सरकार, जो व्यक्ति की चेतना को पूरी तरह से विकसित नहीं होने देती और आम आदमी के उपक्रम का लाभ नहीं उठाती, वह कभी भी प्रशासन की उस शक्ति को प्राप्त नहीं कर सकेगी जो उसके सामाजिक कार्यों में साधन, संस्कृति और विकास की दृष्टि से भिन्न-भिन्न करोड़ों लोगों के सचेत भाग लेने से और अधिक बढ़ जाती है। अतः हम यह महसूस करते हैं कि प्रशासन की बुनियादी इकाइयों के रूप में ग्राम पंचायतें स्थापित की जानी चाहियें और उन्हें शासन की खासी शक्तियाँ प्रदान की जानी चाहियें। विभिन्न स्तरों पर सामाजिक सहयोग के लिए परोक्ष चुनाव तथा शक्तियों के प्रत्याधिकरण के द्वारा अन्य प्रादेशिक संस्थाएँ बनाई जानी चाहियें। इस प्रक्रिया के द्वारा एक पिरामिडाकार प्रशासन-यंत्र का निर्माण होगा जिसमें सरकार की अधिकांश शक्तियाँ नीचे होंगी और नीचे से ऊपर जाते-जाते इस प्रकार कम होती जायेंगी कि ऊपर का प्रशासन न्यूनतम शक्तियोंवाला हो।

“नीचे शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, भूमि तथा विकेन्द्रित उद्योगों की समस्या का प्रबंध करनेवाली ग्राम-पंचायतें होंगी। ग्राम पंचायतों से अप्रत्यक्ष रूप से चुनी गई एक प्रादेशिक परिषद् होगी और पंचायतों की प्रादेशिक परिषदों से इसी रूप में चुनी गई पंचायतों की प्रान्तीय परिषद् होगी। प्रांतीय पंचायत परिषदों द्वारा परोक्ष रूप से चुनी गई एक अखिल भारतीय पंचायत परिषद् होगी। केवल ग्राम पंचायतों का चुनाव ही सकल बालिग मताधिकार द्वारा होगा।

“...उपरिलिखित के अनुसार कृषि, विकेन्द्रित उद्योगों तथा सार्वजनिक मिल्कियतवाले केन्द्रित उद्योगों का आयोजन तीन विभिन्न परिषदों के नीचे होगा। पहली दो संस्थाओं की बनावट पूर्णतः विकेन्द्रित होनी चाहिये जिसमें देहाती जनता भूमि-परिषद् की, तथा बहुदेशीय सहकारी सभा विकेन्द्रित उद्योगों की परिषद् की बुनियादी इकाई होगी।”

यह योजना भारत के संविधान के लागू होने के पूर्व प्रकाशित कर दी गई थी। इसके कई भागों और सुझावों को संविधान में स्वीकार नहीं किया गया है। तथापि संविधान के राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्त काफ़ी हद तक इस योजना के आधारभूत सुझावों के अनुसार ही हैं। भारत की पहली पंचवर्षीय योजना संविधान के उपबंधों के अन्दर ही बनी है। अतः यह स्पष्ट है कि पंचवर्षीय योजना सर्वोदय योजना के एकदम अनुकूल नहीं हो सकती। लेकिन फिर भी जहाँ तक ग्राम समाज और उसकी मौलिक इकाई—ग्राम-पंचायत—का सम्बन्ध है, इस योजना को सरकारी योजना में भी पर्याप्त महत्त्व दिया गया है।

योजना को कार्यान्वित करने के लिए जो यंत्र योजना आयोग ने प्रस्तावित किया है, उसमें इस ग्राम्य संस्था के महत्त्व को पूर्णतया स्वीकार कर लिया गया है। आयोग की रिपोर्ट का कुछ संबंधित अंश हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं—

“भारत में सैकड़ों वर्षों से मालगुजारी तथा पुलिस के प्रबन्ध के लिए ग्राम एक प्रारंभिक प्रशासनिक इकाई रहा है। परन्तु सामाजिक तथा आर्थिक संस्था के रूप में यह अंग्रेजी राज में कमजोर होता गया। ज्यों-ज्यों अंग्रेजों का राज प्रबन्ध स्थिर हुआ त्यों-त्यों ग्राम समाज बढ़ती हुई मात्रा में सरकार पर निर्भर रहने लगा और अपने मामलों के प्रबन्ध में निर्बल होता गया। विकास कार्यों में सरकारी विभाग सम्पूर्ण ग्राम समाज से सामूहिक रूप से सम्पर्क न रख कर गाँव के अलग-अलग व्यक्तियों से सीधा सम्पर्क रखते थे। अतः ३० वर्ष का विकास कार्य जनता के एक बहुत थोड़े अंश पर ही प्रभाव डाल सका।

“बहुत से राज्यों में ग्राम पंचायतों के निर्माण के कानून बन चुके हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् बहुत से राज्यों ने इन कानूनों को इस उद्देश्य से संशोधित किया है कि पंचायतों का विकास शीघ्रता से हो और उनका कार्यक्षेत्र विस्तृत किया जाये। बहुत से विलीन हुए क्षेत्रों में भी इसी तरह के कार्य शुरू करने की आवश्यकता है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि भारत में पंचायत सम्बन्धी कानून पर्याप्त मात्रा में विचार की स्वतन्त्रता तथा विकास के लिए तीव्र इच्छा के द्योतक हैं, जिसमें यह ध्येय दीखता है कि ग्राम को राष्ट्रीय संगठन में एक आवश्यक मौलिक इकाई बनाया जाये ताकि संविधान के इस निर्देश को कार्य रूप

में परिणित किया जा सके और गाँवों में पंचायतें बनाकर उन्हें ऐसे अधिकार दिये जायें कि वे स्वायत्त शासन की इकाई के रूप में काम कर सकें। इस सिद्धान्त को क्रियात्मक रूप देने में कुछ राज्यों ने काफी सफलता प्राप्त की है, परन्तु सामूहिक तौर पर देश में अभी तक बहुत कुछ करने को बाकी है। हमारी राय यह है कि राज्यों में आगे के कुछ निश्चित समय के भीतर ग्रामों अथवा ग्राम समूहों के लिए पंचायतें बनाने का कार्य होना चाहिये।

“पंचायतों के कार्यक्रम के अंतर्गत बहुत से नागरिकता सम्बन्धी तथा आर्थिक काम भी लिये जा सकते हैं। इसके साथ-साथ पंचायतें न्याय सम्बन्धी कार्य भी करती हैं। परन्तु तथ्य यह है कि बहुत कम पंचायतें ये सभी काम करती हैं। अधिकतर पंचायतों के कार्यों पर स्थानीय दलबन्दी, अर्थाभाव तथा निर्देशन की कमी की छाप प्रत्यक्ष दीखती है। पंचायतों ने गाँवों में सामाजिक जागृति लाने में भी सहायता दी है परन्तु ग्राम्य जीवन को उन्नत करने तथा स्वावलम्बन की भावना जाग्रत करने के कार्य में पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं हुई है। इसमें अपवाद तो अवश्य हो सकते हैं, परन्तु यह ठीक है कि पंचायतें ग्राम पुनर्गठन के लिए, जो इनका वास्तविक ध्येय था, सफल यंत्र न बन सकीं। हमारा विश्वास है कि पंचायतें अपने नागरिक कर्तव्य सफलतापूर्वक निभाने में तभी योग्य होंगी कि जब उन्हें विकास कार्य से संबंधित किया जायेगा, और उस कार्य में ग्राम पंचायतों को प्रभावशाली हिस्सा दिया जायेगा। जबतक ग्राम-संस्था ग्रामीण साधनों को विकसित करने का उत्तरदायित्व नहीं संभालती तबतक ग्रामीण

जीवन पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता, क्योंकि वही ग्राम संस्था, जो ग्रामीण जनता के सामूहिक हित का प्रतिनिधान करती हो, आवश्यक नेतृत्व उपलब्ध करा सकती है। राजकीय संस्थाओं की प्रत्येक ग्रामीण तक अलग-अलग पहुँच नहीं हो सकती, इसलिए उनकी पहुँच मुख्यतः इन्हीं संस्थाओं पर निर्भर करती है।

“जहाँ पर पंचायत और सहकारी सभाएँ दोनों हों, वहाँ पर ग्रामीण जीवन में इन दोनों के कर्तव्यों का नियमित रूप से वर्गीकरण आवश्यक हो जाता है। बहुत-सी ऋण सम्बन्धी सहकारी सभाएँ आजकल बहुद्देशीय सभाओं में परिवर्तित की जा रही हैं। परन्तु बहुद्देशीय कार्य अभी तक पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुए हैं। सहकारी सभा के कार्य इन उद्देश्यों के अधीन चलाये जाते हैं और ये उसके सदस्यों तक ही सीमित रहते हैं। सहकारिता के विकास के साथ-साथ यह आन्दोलन ग्रामीणों का अधिकाधिक प्रतिनिधि होता जायेगा। दूसरी ओर पंचायतों के सम्बन्ध में पहले से ही यह धारणा है कि वे गाँव के समस्त समाज की प्रतिनिधि होंगी जिनमें गाँव के वे लोग भी शामिल होंगे जो कृषि कार्य नहीं करते। परम्परा तथा कानून के अधीन पंचायत के अधिकार जनता के सभी अंगों की माँगों को पूरा करने के लिए काफी विस्तृत हैं। यदि ग्राम पंचायतों को विकास योजनाओं के साथ अधिक घनिष्टता से सम्बन्धित किया जाये तो ग्रामीण नेतृत्व अधिक सफलता से विकसित होगा और सहकारी कार्य सुदृढ़ होगा।

“वर्तमान कानूनों के अधीन पंचायतों को पहले से ही कई अधिकार प्राप्त हैं। भिन्न कार्यों की जिम्मेदारी निभाने के लिए

राज्य सरकार उन्हें उपयुक्त अधिकार दे सकती है जैसे—

- (१) गाँव के लिए पैदावार का कार्यक्रम बनाना और इसे चलाने तथा आर्थिक सहायता देने के लिए बजट तैयार करना ।
- (२) सरकारी संस्थाओं द्वारा न दी जानेवाली सहायता ।
- (३) ग्राम में उपज को बढ़ाने के लिए कृषि के निम्नतर स्तरों का संरक्षण; बंजर भूमि को काश्त में लाना तथा जिस भूमि का मालिक उसकी काश्त न करता हो उसकी काश्त का प्रबन्ध ।
- (४) सामाजिक कार्यों के लिए स्वेच्छा से श्रम प्राप्त करने का प्रबन्ध करना ।
- (५) वर्तमान कानून के अनुसार गाँव में खेती और दूसरे कामों में सहकारिता को प्रोत्साहन देना ।
- (६) भूमि सुधार सम्बन्धी कानूनों को क्रियान्वित करने में सहायता देना ।

“अपनी समस्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त करके ग्राम-समाज उन्हें एकत्रित हो कर हल कर सकता है । इसलिए गाँव के नेताओं और प्रसार कार्यकर्ताओं का पहला लक्ष्य यह होना चाहिये कि ग्राम समाज के सभी अंगों के भले तथा हित की जिम्मेदारी लें और उपलब्ध साधनों को प्रयोग में लाने की कोशिश करें ।

“ग्राम के विकास कार्यक्रम के लिए पंचायत कानून में ऐसे प्रावधान होने चाहियें कि राज्य सरकार कुछ और व्यक्तियों को नियुक्त कर सके ताकि पंचायतें ग्राम विकास संस्था की तरह काम कर सकें ।

“ग्राम विकास संस्था धीरे-धीरे स्थानीय सहकारी सभा

तथा कृषकों द्वारा माने हुए समस्त ग्राम की उपज बढ़ाने के कार्यक्रम को चलाने योग्य हो जायेगी । देश के हर एक हिस्से में हालात भिन्न-भिन्न हैं । अतः यह सुझाव साधारण तथा मोटे तौर पर ही दिये गये हैं ।

“भिन्न-भिन्न राज्यों की विधान सभाओं ने कई कर लगाने के कानून बनाये हैं, उदाहरण के लिए, भूमि और भवन सरीखी अचल सम्पत्ति पर कर, गाड़ी कर, मृत्यु कर, न्याय सम्बन्धी जुर्माने, आदि । राज्य सरकार और जिला बोर्ड की ओर से आर्थिक सहायता दिये जाने के लिए भी उपबंध हैं । कुछ राज्यों ने ग्राम पंचायतों को श्रम के रूप में कर लेने के अधिकार दिये हैं । कानून के अनुसार हर एक मनुष्य को वर्ष में नियत अवधि के लिए काम करना पड़ता है । कुछ राज्यों में जो मनुष्य श्रम के रूप में सहायता न कर सके उसके लिए यह व्यवधान भी है कि वह एवजी काम या एवज में सहायता दे । निस्सन्देह कानून इस श्रम-प्राप्ति में सहायक हो सकता है परन्तु ग्राम विकास कार्यों में लोगों का सहयोग अधिक मात्रा में तभी काम में आ सकता है कि जब ग्राम पंचायतें ग्राम की दशा को उन्नत करने और साम्प्रदायिक कार्य को सजीव करने में स्थानीय लोगों को उत्साहित करें । पंचवर्षीय योजना में इस बात का व्यवधान है ।

“स्थानीय अर्थानुसन्धान समिति का सुझाव है कि मालगुजारी का २५ प्रतिशत भाग पंचायतों को दिया जाना चाहिये । हम यह समझते हैं कि ग्राम पंचायत को एक मौलिक राशि दी जानी चाहिये ताकि वह कुछ थोड़ी ही कोशिश करके गांववालों की इतनी सेवा कर सके जिससे कि वह उनकी आर्थिक दशा को

उन्नत कर सके। यह आवश्यक है कि जब राज्य सरकारें अपनी योजनाएँ बनायें तो वे मालगुजारी का पूरा खयाल रखें। यदि इसका कुछ हिस्सा पंचायतों को दे दिया जाय तो राज्य सरकार की योजना उससे प्रभावित होगी। अच्छी यह होगा कि हर राज्य मालगुजारी पर थोड़ा-सा अतिरिक्त कर या अधिकर (सेस) लगा दे और वह कर पंचायतों को दिया जाय। एक अतिरिक्त तरीका यह हो सकता है कि राज्य पंचायतों के सदस्यों और कर्मचारियों के प्रशिक्षण की ओर खास ध्यान दे ताकि पंचायतें सामाजिक शिक्षा का केन्द्र बन सकें। राज्यों को पंचायतों की उन्नति के इस ढंग का अच्छी प्रकार से अध्ययन करना चाहिये ताकि हर राज्य एक-दूसरे के अनुभव से लाभ उठा सके।

“वैसे तो देश के अधिकांश भागों में गाँव ही सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक संगठन की प्रारम्भिक इकाई है, पर फिर भी कुछ खास कार्यों के लिए इकाई अधिक बड़ी होनी चाहिये। उदाहरण के लिए पंचायत तथा सहकारी विभागों के वैतनिक कर्मचारियों तथा सप्लाई के लिए अधिक बड़ी इकाई अधिक उपयोगी रहेगी। इकाई कितनी बड़ी हो, यह स्थान-स्थान की परिस्थितियों, बचत तथा कार्यकुशलता आदि पर निर्भर होना चाहिये।

“एक विकास क्षेत्र का सहकारी कृषि, पंचायत तथा पशुओं की देख-भाल का यंत्र सामान्य होना चाहिये। सामुदायिक योजनाओं के लिए विकास क्षेत्र की उन्नति के लिए प्रसार अधिकारी न होकर एक विकास टीम होनी चाहिये। इसके लिए कृषि, पशु-चिकित्सालय, सहकारी आंदोलन, पंचायत, घरेलू उद्योग, स्वास्थ्य और शिक्षा विभागों की योजनाओं को चालू

करने के लिए सभी एजेंसी होनी चाहिये। इन विभागों के कर्मचारियों को संगठित होकर काम करना चाहिये। मालगुजारी विभाग के कर्मचारियों को भी इनके साथ ही मिलकर काम करना चाहिये। कुछ राज्यों में पंचायत विभाग सहकारी विभाग के अधीन है। ऐसा करना बहुत लाभदायक है। ग्राम स्तर पर सहकारी तथा पंचायत विभाग के कर्मचारी सांभे होने चाहियें।

“हर राज्य को अपनी आवश्यकता के अनुसार अपने विकास-संगठन का नमूना बनाना होगा। इसमें इन बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) बहुमुखी काम करनेवाला ग्राम सेवक ही एक गाँव में विकास विभाग का प्रतिनिधि हो। (२) विकास क्षेत्र में ग्राम सेवक विकास अधिकारी, एस. डी. ओ. तथा माल अफसरों के साथ मिलकर काम करें। (३) विकास के सब काम संगठित रूप से करने के लिए कलेक्टरों को प्रसार कार्य सम्बन्धी अधिकार दिये जायें। इसमें स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन किये जा सकते हैं। यह सुझाव कलेक्टर पर बड़ी जिम्मेदारी डालते हैं। इसलिए उसे एक सहायक दिया जाना चाहिये जो इसकी ओर अधिक ध्यान दे सके।

“विकास के काम में, और वस्तुतः सरकार के समूचे कार्य में, हर एक स्थान पर सरकारी अफसरों को जनता के साथ मिलकर काम करना चाहिये। यह बड़ी आवश्यक बात है क्योंकि विकास क्षेत्र में लाये गये शासन सम्बन्धी परिवर्तन तभी सफल होंगे कि जब सरकारी अफसर और जनता सहयोग तथा भाईचारे की भावना से प्रेरित होकर काम करेंगे। साथ ही ऊपर से लेकर

नीचे तक सभी कर्मचारियों को अपने विचार प्रकट करने और सुभाव देने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये । काम करने का अवसर स्त्रियों और पुरुषों दोनों को दिया जाना चाहिये । ग्राम सेवक के पद पर ऐसे ही उम्मीदवारों को रखना चाहिये जिनको विकास कार्य का तजुर्बा हो और जिनमें सेवा भाव तथा लगन हो ।”

लोकतांत्रिक आयोजन की सफलता जनता के सहयोग पर निर्भर होती है । इस सहयोग को प्राप्त करने तथा उसे उचित रूप से क्रमबद्ध करने के लिए जनता की संस्थाओं का होना आवश्यक है । यह अनुभव सिद्ध बात है कि जहाँ-जहाँ योजना पूर्ति का कार्य उपयुक्त पंचायतों के सुपुर्द किया गया है, वहाँ वह बहुत सफल रहा है । यह सफलता इसलिए और भी अधिक मूल्यवान है कि जनता उस सफलता को अपनी सफलता समझती है । इससे उसमें आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है । अकेले उत्तर प्रदेश में १९५३-५४ में पंचायतों द्वारा लगभग साढ़े आठ करोड़ रुपये के मूल्य का विकास कार्य किया गया था । यदि सारे देश में पंचायतों द्वारा हुए कार्य का मूल्यांकन किया जाये तो वह अरबों रुपये का होगा । इससे पता लगता है इस संस्था के ठीक ढंग से परिचालित होने से किस प्रकार करोड़ों नर-नारी देश के नव-निर्माण के कार्य में जुट कर अमूल्य कार्य कर सकते हैं । सन् १९५५ में सामूहिक योजनाओं और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के कामकाज पर योजना आयोग की समीक्षा समिति की दूसरी रिपोर्ट में कहा गया है—

“पंचायतों पर प्रशासन और राष्ट्रीय विस्तार कार्य की अधिकाधिक जिम्मेदारी डाली जानी चाहिये । इसी से लोकतन्त्र को बल मिलेगा और सामुदायिक योजना का उद्देश्य सफल होगा । ..

योजना सलाहकार समितियाँ उपयोगी सिद्ध नहीं हुई हैं, यह काम स्थानीय स्वशासन संस्थाओं की कार्यकारिणी समितियों से लेना चाहिये ।...पंचायतों और सहकारी समितियों के ठीक संगठन के बिना राष्ट्रीय विस्तार काम स्वाभाविक रूप से चलना और बढ़ना सम्भव नहीं है ।”

इन बातों को ध्यान में रखते हुए द्वितीय पंचवर्षीय योजना के बनाने के संबंध में प्रधान मंत्री का यह निर्देश उचित ही है कि उसका आधार गाँव हो । भारत के नव-निर्माण तथा विकास के कार्य में पंचायतों की कितनी उपादेयता है और इन पर इस सम्बन्ध में कितना उत्तरदायित्व पड़ता है, यह ऊपर की पंक्तियों से सिद्ध हो जाता है । पंचायत राज की धारणा का मौलिक ध्येय वस्तुतः यही है कि ग्रामीण आत्म-विश्वास की ज्योति से जागृत हो कर स्वावलम्बन द्वारा अपना विकास करें । ग्रामों के स्वावलम्बी होने से ही योजना का पहला कदम पूरा होता है । फिर ग्रामीणों के जीवन का स्तर ऊँचा होगा । उनके उत्पादन के साथ-साथ उनकी क्रय शक्ति बढ़ेगी और इसी तारतम्य से हम उन्नति की ओर अग्रसर होंगे । शनैः शनैः केन्द्रीय शासन का कार्यभार घटता जायगा । लोग एक नये जीवन, नये अनुशासन, नये उत्साह और नयी शक्ति से सम्पन्न होकर शासन की बहुत-सी जिम्मेदारियाँ संभाल लेंगे । शासन शक्ति वस्तुतः जनता में पहुँचकर उससे ही क्रमानुसार ऊपर को एक वृक्ष की भाँति बढ़ेगी । स्वावलम्बन से जनता स्वशासन की और स्नेह तथा सद्भावना के वातावरण में बढ़ती हुई चिरवांछित शासन निरपेक्ष समाज के आदर्श के समीपतम सोपान तक पहुँच सकेगी ।

: ५ :

विभिन्न राज्यों में पंचायतें

स्वतन्त्र भारत में पंचायतों की क्या स्थिति है और उन्हें कितना महत्त्व प्रदान किया गया है, यह हम देख चुके हैं। लेकिन जबतक हम यह और न देख लें कि विभिन्न राज्यों में पंचायतों की प्रगति का क्या क्रम रहा है और उनकी वर्तमान ढाँचे में क्या स्थिति है, तबतक हम पंचायत राज की भावी रूपरेखा की भली प्रकार से कल्पना नहीं कर सकते। इस अध्याय में भारत के विभिन्न राज्यों में पंचायतों की प्रगति, स्थिति और विकास-क्रम का अध्ययन किया गया है।

अजमेर

अजमेर राज्य में पंचायत सम्बन्धी नया कानून १९५३ में बना। तदनुसार हरेक गाँव अथवा ग्राम समूह के लिए ग्राम सभा बनाई जाती है। सभी वयस्क इसके सदस्य होते हैं। ये वयस्क मताधिकार से पंचायत का निर्वाचन करते हैं। ग्राम पंचायत की महीने में एक बैठक आवश्यक रखी गई है। पंचायतों के कार्य, अनिवार्य तथा ऐच्छिक, दोनों तरह के रखे गये हैं। अनिवार्य कार्य निम्न हैं —

ग्राम रास्तों का निर्माण तथा उनकी मरम्मत; डाक्टरी सहायता, सफाई तथा संक्रामक रोगों की रोक-थाम; जन्म-मरण तथा विवाहों का पंजीयन (रजिस्ट्री); मेले, बाजारों तथा भवन-निर्माण का नियमन; उद्योग, प्रसूति सेवा तथा शिशु-कल्याण; खाद-

संग्रह करने के स्थान निश्चित करना; सहकारी खेती को प्रोत्साहन देना तथा अन्य सार्वजनिक उपयोग के कार्य ।

ऐच्छिक कार्यों में ये काम रखे गये हैं—

पेड़ लगाना, गढ़े भरना, पशुओं की नस्ल का सुधार, सुधरे बीजों का प्रसार, सामाजिक सद्भावना व एकता का वर्धन तथा अन्य कल्याणकारी कार्य । इनके अतिरिक्त जलाशयों, पथों आदि पर भी इन्हीं का प्रबन्ध होता है । ग्राम-सभा भूमि प्राप्त तथा हस्तान्तरित कर सकती है । राज्य सरकारी भूमि इनके प्रबन्ध में दे सकता है ।

पंचायत अनिवार्य रूप में श्रम ले सकती है तथा सम्पत्ति संरक्षण के लिए नियम बना सकती है । पंचायत की आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले को ५० रुपये तक जुर्माने का दण्ड दिया जा सकता है ।

आय के साधन

कर । धूल, मिट्टी व खाद के विक्रय से आय । जुर्माने, उपहार, राजकीय अनुदान, पंचायत बाजारों में माल बेचने व पशु-विक्रय पर तथा विकास-कार्य के लिए अनिवार्य कर भी लगा सकते हैं और यातायात के साधनों, दोभ्र ढोनेवाले पशुओं, गाड़ी तथा पशु खड़ा करने के स्थानों, निजी पाखाना साफ करने आदि पर वैकल्पिक कर भी लगा सकती है । पंचायत ३० दिन तक श्रम-कर भी लगा सकती है और करों को माफ भी कर सकती है ।

न्याय

जिलों को सरकिलों में बाँटा जाता है जिसमें निश्चित ग्राम-सभाएँ शामिल होती हैं । जिला मजिस्ट्रेट ग्राम-सभा सदस्यों में से

पंचों को छाँटता है। सरपंच भी वही नियुक्त करता है। इनके अधिकार निम्न हैं—

दीवानी

संहितानुसार देय धन व चल-सम्पत्ति को पुनःप्राप्ति, सार्व, जनिक सम्पत्ति को क्षति पहुँचाने पर क्षतिपूर्ति, पशु अतिक्रमण अधिनियम के अधीन दीवानी वाद। दोनों पक्षों की सम्मति से न्याय पंचायत का अधिकार बढ़ाया जा सकता है।

फौजदारी

भारतीय दण्ड संहिता की धारा, १६०, १७४, १७८, १७९, २८९, २९०, ३७९, ३८० ४११, ४२६, ४८८ के अधीन वाद।

ये पंचायतें ५० रुपये तक जुर्माना कर सकती हैं। इनमें वकील पैरवी नहीं कर सकते। वाद सरपंच के पास पेश होता है। शांति भंग की आशंका पर पंचायत मुचलका व जमानत भी ले सकती है। अपील विनिहित अधिकारी के पास जाती है।

आसाम

इस राज्य में कुल २५,३२७ ग्राम हैं जिनमें से ३,६३३ के लिए ग्राम पंचायतें बन चुकी हैं। आसाम का पहला ग्राम-पंचायत अधिनियम १९४८ में बना जो १९५२ में संशोधित हुआ। यहाँ हर मौज़ा के लिए एक ग्राम्य-पंचायत बनाई जाती है जिसकी जनसंख्या २०,००० से २५,००० तक होती है। हर ग्राम्य-पंचायत को पाँच प्राथमिक पंचायतों में विभक्त किया जाता है। ध्येय यह है कि पंचायतें स्वावलम्बी हों। ये प्राथमिक पंचायतें हर ५०० व्यक्तियों के पीछे ग्राम्य-पंचायत के लिए एक प्रतिनिधि

चुनती हैं। प्राथमिक पंचायत के सदस्य वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने जाते हैं। सदस्यों की पदावधि तीन वर्ष होती है। हर वर्ष तीन सदस्यों का पदविमोचन होता है। चुनाव पद्धति सांभी है। एक से अधिक प्राथमिक पंचायत का कोई भी सदस्य नहीं बन सकता। पहाड़ी इलाके में पंचायतें नहीं हैं।

पंचायतों के कर्तव्य

ग्राम्य-पंचायत एक प्रधान चुनती है जिसकी सहायता कार्य-पालिका परिषद् करती है। इनके कर्तव्य हैं—सड़कों की सफाई व सुरक्षा; महामारी तथा संक्रामक रोगों की रोक-थाम व निवारण; सार्वजनिक कुओं व तालाबों आदि का निर्माण, उनकी सुरक्षा व मरम्मत; जन-गणना के आँकड़ों की सुरक्षा; संचार-साधनों में सुधार; सुरक्षा के लिए ग्राम सेवक दल का संगठन; स्वीकृति से ग्रामों का नव-निर्माण, भूमि के विभाजीकरण की रोक-थाम, ग्रामों का विकास; सामाजिक एकता व समता स्थापित करना; ग्राम्य-व्यापार संस्थाओं की स्थापना आदि। पेड़ लगाना, मेले-हाटों का नियमन, बाल-विवाह निरोध के लिए कानून तथा आग्रह द्वारा काम करना, गाँवों में खेलों को लोकप्रिय बनाना तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य भी पंचायतों द्वारा किये जा सकते हैं।

प्रत्येक प्राथमिक पंचायत विवाहों का रजिस्टर रखती है। यह सरकार से कर-संग्रह करने का ठेका भी ले सकती है।

ग्राम के साधन

आसाम ग्राम विकास निधि सरकारी निधि है। तहसील के स्तर पर एक अन्य निधि भी स्थापित की जायेगी। इस निधि से पंचायतों को उचित रूप से धनराशि दी जायेगी। प्रत्येक

पंचायत की पंचायत निधि होती है। न्याय पंचायतों में वाद प्रस्तुत करने पर जो फीस लगती है, उससे यह निधि बनती है। इसमें जुर्माने, सरकारी अनुदान व अंशदान, पंचायती सम्पत्ति की बिक्री से आय, मालगुजारी पर एक आना प्रति रुपया कर, बंजर भूमि, इमारतों, विवाहों, जल तथा गाड़ियों पर कर शामिल होंगे। इन्हें वयस्कों पर श्रमकर लगाने का भी अधिकार है। अपने क्षेत्राधिकार में ये सरकारी बंजर भूमि तथा मछली के तालाबों पर नियंत्रण रखती हैं, और उनसे प्राप्त आय को भी अपने काम में ला सकती हैं। खाद, गोबर, मिट्टी तथा कूड़ा बेच कर तथा उपहार व ऋण द्वारा प्राप्त आय भी पंचायत निधि में जमा होती है।

न्याय

अभीतक न्याय पंचायतें नहीं हैं पर उनके लिए अधिनियम में प्रावधान है। तदनुसार यह पंचायतें ग्राम पंचायतों से स्वतंत्र होंगी और इनके सदस्य राज्य द्वारा मनोनीत होंगे। ऐसा ही पंचायत जाँच समिति का सुभाव भी है।

फौजदारी अधिकार

पंचायती अदालतें भारतीय दण्ड संहिता की कुछ विशिष्ट धाराओं के अन्तर्गत, जैसा कि अन्य राज्यों में है, वाद सुन सकती हैं।

ये पशु अतिक्रमण अधिनियम के अन्तर्गत अपराधों की भी जाँच कर सकती हैं। जो वाद अधिनियमानुसार पंचायतों के सुपुर्द हों, वे साधारण कचहरियों में पेश नहीं हो सकते। इनको २५० रुपये तक जुर्माना करने का अधिकार होगा। ये कैद का दण्ड नहीं दे सकतीं। अनुचित फौजदारी वाद का अभियुक्त को

मुआवजा भी दिलवा सकती हैं। इनकी निगरानी नियुक्त अधिकारी द्वारा जाती है। अपील नहीं होती।

विशेष

ग्राम विकास बोर्ड सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा, आदि कार्यों का एकीकरण करता है। पंचायत विभाग कोई पृथक विभाग नहीं है। विकास अधिकारी ही तहसील व जिला स्तर पर इनकी देखरेख करते हैं। सरकार को पंचायत भंग करने अधिकार है। हर तहसील के लिए एक स्थानीय बोर्ड है जो पंचायतों के ध्येय की पूर्ति करता है।

उड़ीसा

उड़ीसा में ४८,३६८ ग्राम हैं जिनमें से २७,४२७ ग्रामों में पंचायती प्रबन्ध स्थापित हुआ है। प्रथम बिहार-उड़ीसा स्थानीय स्वशासन अधिनियम १८८५ में पास हुआ था। उड़ीसा ग्राम पंचायत अधिनियम १९४८ में पास हुआ।

ग्राम पंचायतें

ग्राम पंचायतें ५,०००, से १०,००० जनसंख्या के विशिष्ट क्षेत्रों में स्थापित की गई हैं। पहले ये २,००० जनसंख्या के लिए होती थीं। चुनाव वयस्क मताधिकार द्वारा होता है। सभी सदस्य निर्वाचित होते हैं। जिलाधीश पंचायतों का क्षेत्र तथा सदस्यों की संख्या निर्धारित करता है। चुनाव गुप्त मतदान द्वारा होता है। परिगणित तथा अल्पसंख्यक जातियों के लिए स्थान सुरक्षित रहते हैं। सरपंच सदस्यों द्वारा चुना जाता है न कि समस्त मतदाताओं द्वारा। ग्राम पंचायत और पंचायती अदालत के लिए ग्राम सभा ही सदस्य चुनती है।

अधिकार व कर्तव्य

डाक्टरी सहायता, सफाई-सुथराई, प्राथमिक शिक्षा, ग्राम चरागाहों की स्थापना, उनका प्रबन्ध व उनकी देखरेख, ग्राम पथों की सुरक्षा, जल प्रबन्ध, भवन निर्माण तथा उनकी सुरक्षा, आदि पंचायतों के अनिवार्य कार्य हैं ।

ऐच्छिक कार्यों में वृक्षारोपण, पशु तथा सामान्य चिकित्सा, अकाल पीड़ितों की सहायता, ग्राम सेवक संगठन और पुस्तकालय संगठन, आदि आते हैं । सार्वजनिक सड़कों व जल-मार्गों पर पंचायतों का नियंत्रण है । ये सिंचाई का प्रबन्ध कर सकती हैं, भूमि प्राप्त कर सकती हैं और वयस्कों पर अनिवार्य श्रमकर भी लगा सकती हैं ।

आय के साधन

अचल सम्पत्ति के मालिकों व उसपर कब्जा रखनेवालों, दलालों, पल्लेदारों आदि पर कर, कसाईखानों पर शुल्क, व्यवसायों व व्यापारों पर कर । राज्य प्रारम्भ में २५० रुपये का अनुदान देता है । इसके अतिरिक्त पंचायत निधि में ये सब रकमें भी आ जाती हैं—सफाई के कार्यों के लिए अनुदान, जुमनि आदि से प्राप्त रकम, मछली व्यापारियों से प्राप्त कर, पंचायती जमीन का लगान, अनाज के गोदामों से ऋण पर प्राप्त बीज पर स्वाई अर्थात् २५% कर ।

न्याय

प्रत्येक ग्राम सभा अदालती पंचायत के लिए ६ सदस्य चुनती है । कई गाँवों के लिए एक न्याय पंचायत होती है, और हर वाद की सुनवाई के लिए एक पीठिका (बेंच) बना दी जाती

है। इसमें एक-एक पंच पक्षों के पंचायती क्षेत्रों से और एक उनके बाहर से लिया जाता है।

पंचायती अदालत के अधिकार

पंचायती अदालतों के अधिकार ये हैं:—

पंचायती अदालत को भारतीय दण्ड संहिता के अधीन साधारण वाद सुनने के अधिकार हैं। इनकी अपील नहीं होती। यदि दोनों पक्ष सहमत हों तो पंचायत मध्यस्थ बन सकती है। कुछ ऐसी पंचायतों के ४११, ३७६ और ५२६ धाराओं के अधीन भी अधिकार दिये गये हैं। निर्णय बहुमत द्वारा होता है।

अंचल शासन

सारे राज्य को ११८ अंचलों में बाँटा गया है। बड़ी-बड़ी नगरपालिकाएँ इनसे स्वतंत्र हैं। हर अंचल के लिए एक अंचल सभा होती है जिसके लिए अंचल की हर पंचायत तथा नोटी-फाईड एरिया कमेटी प्रतिनिधि चुनकर भेजती है। ये अपने में से एक प्रधान तथा एक उप-प्रधान चुनती हैं जिनको वेतन भी दिया जा सकता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि विकास आदि के लिए इनकी स्थायी समितियाँ होती हैं। बजट तथा अन्य वैक्तिक व दूसरे आवश्यक कार्य कार्यकारिणी समिति करती है। अंचल सभा का कार्य सम्पादन करने के लिए एक एजीक्यूटिव आफिसर होता है। इसे स्वास्थ्य, निर्माण, कृषि तथा शिक्षा अधिकारियों की सहायता प्राप्त होती है। विभिन्न विभागों के जिला अधिकारी अंचल सभा के लिए मनोनीत किये जा सकते हैं। इन सभाओं का हाई स्कूलों से नीचे की शिक्षा, स्वास्थ्य, डाक्टरी सहायता, पशु चिकित्सा, ग्रामीण वन, यातायात तथा क्षेत्र की

ग्राम पंचायतों पर अधिकार होता है।

यह विचार किया जा रहा है कि राज्य की सारी माल-गुजारी इन अंचल सभाओं की दे दी जाय, और यही इसे इकट्ठा भी करें।

अन्य पहलू

इस राज्य में यह अनुभव किया गया है कि ग्राम पंचायतों के सदस्य ४० वर्ष से अधिक आयुवाले हों।

राज्य में कोई पृथक पंचायत विभाग नहीं है। जिलाधीश ही पंचायत विभाग सम्बन्धी सब कार्य करता है। सब-डिवीजनल आफिसर उसका प्रतिनिधि होता है। सहकारी सभाओं के रजिस्ट्रार के क्षेत्रीय अधिकार भी उनको दिये जाने की योजना है।

उत्तर प्रदेश

इस राज्य में १,१२,००० गाँव हैं। यह सब पंचायत राज्य योजना के अधीन आ चुके हैं। प्रदेश में कुल ३६,१३६ ग्राम सभाएँ और ८,५४३ न्याय पंचायतें हैं। इस राज्य में नवीन ढंग का पंचायत राज अधिनियम १९४७ में पास हुआ था। यह १९५०, १९५२ और १९५४ में संशोधित किया गया था।

ग्राम पंचायत

१००० जनसंख्या वाले हरेक ग्राम अथवा ग्राम समूह के लिए एक गाँव सभा होती है। गाँव सभा के क्षेत्र में रहनेवाले सब वयस्क इसके आजीवन सदस्य होते हैं। गाँव सभा की कार्य-कारिणी को ही ग्राम पंचायत कहा जाता है। इसके ३० से ५१ तक सदस्य होते हैं। यह प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने जाते हैं। चुनाव संयुक्त निर्वाचन की पद्धति से होता है। प्रधान व उप-

प्रधान गाँव सभा द्वारा चुने जाते हैं। अल्पसंख्यकों तथा परिगणित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित होते हैं।

जमींदारी उन्मूलन के बाद से प्रत्येक मौजे में गाँव समाज स्थापित किया जाता है। इनकी संख्या ८४,००० है। गाँव के निवासी तथा काश्तकारी से संबंधित सब वयस्क इसके आजीवन सदस्य होते हैं। भूमि प्रबन्ध समितियाँ इनकी कार्यकारिणी होती हैं। बंजर भूमि तथा सब प्रकार की अन्य सरकारी सम्पत्ति गाँव समाजों को सौंप दी गई है।

पंचायतों के अधिकार तथा कर्तव्य

अनिवार्य कर्तव्य ये हैं—

सार्वजनिक रास्तों की देखभाल और सुधार, रोशनी, चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता, जन्म और मृत्यु का पंजीयन, सफाई और प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध।

ऐच्छिक कर्तव्य ये हैं—

वृक्षारोपण, पशु वंश विकास, गाँव की सुरक्षा के लिए ग्राम स्वयंसेवक दल का संगठन, सहकारिता का विकास, अकाल पीड़ितों की सहायता, पुल व पुलियों का निर्माण, सफाई तथा स्कूलों व हस्पतालों का सुधार।

पंचायतों को कर लगाने, भूमिहस्तगत करने तथा कार्य सम्पादन के लिए रुपया उधार लेने आदि के अधिकार दिये गये हैं।

आय के साधन

पंचायतों को निश्चित कर लगाने के अधिकार दिये गये हैं, यथा सीर, खुद काश्त व काश्त की भूमि के लगान पर कर, व्यापारों तथा मकानों पर कर। अन्य साधन हैं—फोसें, जुमनि,

अनुदान तथा लायसेंस फीस ।

न्याय पंचायत

कुछ (३ से ५) गाँव सभाओं को मिला कर न्याय पंचायत सर्किल बना दिये जाते हैं । हर गाँव सभा ५ पंच चुनती है । इस तरह से २०-२५ पंचों का मण्डल बन जाता है । हर वाद के लिए सरपंच ५ पंचों की पीठिका (बेंच) नियुक्त करता है । इनको अविश्वास प्रस्ताव पास करके हटाया जा सकता है । वाद सुनने के अधिकार भारतीय दण्ड संहिता की कुछ धाराओं तक सीमित हैं । दीवानी के ५० रुपये तक मूल्य के सादे वाद सुने जा सकते हैं । १०० रुपये से अधिक जुर्माना नहीं किया जा सकता । पंचायती अदालत कैद का दण्ड नहीं दे सकती । तहसील का अफसर पंचायतों से फैसले के पुनर्विचार के लिए कह सकता है । फैसले के विरुद्ध अपील नहीं हो सकती । इनमें वकील पैरवी नहीं कर सकता । मतभेद होने पर निणय बहुमत द्वारा होता है । जुर्माने सरकार की मदद से वसूल किये जा सकते हैं । न्याय पंचायत का खर्च बराबर के भाग में वृत्त (सर्किल) की ग्राम पंचायतों द्वारा दिया जाता है ।

जम्मू व काश्मीर

जम्मू व काश्मीर में कुल ८,७४० ग्राम हैं इनमें से ४,७७० ग्रामों के लिए ७५१ पंचायतें बनी हुई हैं ।

ग्राम पंचायत

औसतन ४-५ गाँवों के पीछे एक पंचायत होती है । पहले हाथ उठाकर मतदान होता था, पर अब गुप्त पद्धति से होता है । आमतौर पर हर पटवार हलके के लिए एक ग्राम पंचायत

होती है। पिछड़े हुए इलाकों में कुछ नामजदगी भी होती है। प्रधान का चुनाव पंचायत के सदस्य करते हैं।

अधिकार तथा कर्तव्य

पंचायत प्रशासन, नगर पालन व न्याय इनके कर्तव्यों और अधिकारों में आते हैं।

ग्राम-पथों की देख-रेख, सुधार, बाँधों, झरनों तथा भीलों का संरक्षण, निर्माण व जीर्णोद्धार, रेत साफ करना, गढ़ों में खाद आदि जमा करना, वृक्षारोपण, नये मकानों के निर्माण पर नियंत्रण, सफाई, नल-कूप सुधार, गलियों तथा पाखानों की उचित व्यवस्था, आदि इनके कर्तव्य हैं।

पंचायतों की सहायक समितियाँ भी होती हैं जिनको सड़कें बनाने, झरनों की हिफाजत आदि कार्य करने पड़ते हैं।

आय के साधन

तहसील मार्ग कर, फीस, जुर्माने, अंशदान, अनुदान, सरकारी अनुदान आदि।

न्याय पंचायत

ग्राम पंचायतों को ही २५ रुपये तक के दीवानी तथा १० रुपये तक के फौजदारी वाद सुनने के अधिकार हैं। दोनों पक्षों की स्वीकृति से ये अधिकार २०० रुपये तक बढ़ सकते हैं। विभाग चुनी हुई पंचायतों को ७५ रुपये तक के दीवानी तथा चोरी व अतिक्रमण आदि के मुकदमे सुनने के अधिकार दे सकता है।

दिल्ली

दिल्ली में ३५८ ग्राम हैं। २८० ग्रामों में ७८ पंचायतें हैं।

ग्राम पंचायत

पंचायतें वयस्क मताधिकार पर अवलम्बित नहीं हैं। परन्तु नये कानून में इसका प्रावधान रखा गया है। इनको सीमित नागरिक अधिकार प्राप्त हैं। सार्वजनिक स्वास्थ्य, नागरिक जीवन और लोक हितकारी कार्य पंचायतों के कामों में हैं। जिला बोर्डों के अधिकारों तथा पंचायतों के अधिकारों का व्यक्त स्पष्टीकरण नहीं है। नये कानून के अन्तर्गत पंचायतों के मुख्य कर्तव्य निम्न हैं—

उत्पादन की योजनाएँ बनाना, ऊसर भूमि को उर्वर करना, रास्तों की हिफाजत व मरम्मत, डाक्टरी सहायता, सफाई, सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा, जन्म, मरण व विवाहों का पंजीयन, मेलों तथा हाटों का नियमन, पशुओं व मानवों के मरघटों का प्रबन्ध, प्राथमिक शिक्षा, चरागाह, कृषि तथा उद्योग विकास, प्रसूती-गृह व शिशु कल्याण केन्द्रों का निर्माण, खाद जमा करने के स्थानों का निर्धारण करना आदि। ऐच्छिक कार्यों में सरकारी सहायता के लिए साधन बताना, कृषि का निम्नतम स्तर कायम करना, गन्दे गढ़े भरना, पहरेदारी के लिए स्वयंमेवक दल संगठित करना, सहकारिता का विकास, अकाल पीड़ितों की सहायता, सामाजिक समता, एकता व सद्भावना बढ़ाना, भूमि हस्तगत करना, श्रमदान प्राप्त करना, आदि आते हैं।

आय के साधन

अभी तक कोई सुनिश्चित आय के साधन नहीं हैं। नये कानून में ग्राम करों का कुछ भाग तथा कुछ कर लगाने के अधिकार दिये गये हैं।

न्याय पंचायत

नये विधान के अनुसार ४,००० की जनसंख्या के लिए वृत्त-पंचायत बनाने का प्रस्ताव है। १,००० जनसंख्या पर दो और उससे ऊपर के लिए ३ पंच चुने जाते हैं। सरपंच वाद सुनने के लिए ५ पंचों की पीठिका बनाता है।

न्याय पंचायतों के अधिकार उत्तर प्रदेश जैसे ही हैं। इनको अपील सुनने के अधिकार नहीं हैं। जुर्माना करने के अधिकार हैं, पर कारवास देने के नहीं हैं।

पंजाब

इस राज्य में २६,४५५ ग्राम हैं और ये सब पंचायतों के वृत्त में आ चुके हैं। पंचायतों की कुल संख्या ६,१७७ है। पंजाब में पंचायत संबंधी पहला अधिनियम सन् १९३६ में पास हुआ। स्वतंत्रता के बाद सन् १९५२ में पंजाब ने अपना नया अधिनियम बनाया जो १९५३ में संशोधित किया गया। एक और संशोधन करने का प्रस्ताव है।

ग्राम पंचायतें

इस राज्य में हर ५०० की जनसंख्या वाले ग्राम अथवा ग्राम समूह के लिए एक पंचायत बनाई जाती है। वयस्क मतदान द्वारा पंच चुने जाते हैं।

पंचों की संख्या ५ से ६ तक होती है। अनुसूचित जातियों के लिए ५ के पीछे एक स्थान सुरक्षित रहता है। सरपंच का चुनाव पंच स्वयं करते हैं। यदि कोई स्थान रिक्त हो जाये तो नाम निर्देशन द्वारा भर लिया जाता है।

कर्त्तव्य व अधिकार

पंचायती क्षेत्र में सफाई व सुथराई, सार्वजनिक स्थानों में रोशनी, मवेशीखाने, गरीबों की मदद, आमोद-प्रमोद और पढ़ने की सुविधाएँ, कृषि तथा ग्रामोद्योग का विकास, नयी सड़कों का निर्माण तथा पुल-पुलियों की देख-रेख, प्रसूति और शिशु कल्याण केन्द्रों तथा प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रों की स्थापना, अकाल पीड़ितों की सहायता और शैक्षणिक सुविधा प्रदान करना आदि पंचायतों के कर्त्तव्य हैं।

पंचायतों को किसी कुएं या तालाब के पानी के इस्तेमाल को नियमित अथवा निषिद्ध करने तथा गाँव की आबादी के निश्चित दायरे के भीतर सन की धुलाई अथवा चमड़ा रंगने के काम को रोकने के सामान्य अधिकार भी प्राप्त हैं।

आय के साधन

आय के मुख्य साधन हैं—सरकार तथा स्थानीय संस्थाओं द्वारा अनुदान, फीस, जुर्माने तथा भू-राजस्व (मालगुजारी) का १० प्रतिशत। मकान-कर लगाना पंचायतों के लिए आवश्यक है। यदि वे न लगायें तो इसका प्रबन्ध सरकार कर सकती है। सरकार अन्य कर भी लगा सकती है।

न्याय पंचायत

ग्राम पंचायत को ही न्याय पंचायत के भी अधिकार प्राप्त हैं। इस कार्य के लिए कोई पृथक संस्था नहीं है। किसी पंचायत समूह के अधिकार बढ़ाने के अधिकार सरकार को प्राप्त हैं।

ग्राम पंचायतों को दीवानी व फौजदारी दोनों प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं। दीवानी में २०० रुपये तक के साधारण लेन-देन

के मुकदमे तथा फौजदारी में भारतीय दण्ड संहिता की ३२३, ३७६, ४११, ४२६, ४२७ आदि धाराओं के अधीन, तथा टीका अधिनियम व पशु अतिक्रमण अधिनियम के अधीन मुकदमे आ जाते हैं। किसी सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध कोई पंचायत फौजदारी मुकदमा नहीं सुन सकती। दंड के स्वरूप में १०० रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है। कारावास का दण्ड नहीं दिया जा सकता। अदालतों को निगरानी के अधिकार हैं।

अन्य पहलू

राज्य को अधिकार है कि वह किसी पंचायत को भंग करके उसकी जगह दूसरी पंचायत स्थापित कर दे। जिला बोर्ड भी उन्हें अपना काम सौंप सकते हैं। परन्तु इसके लिए उन्हें अतिरिक्त खर्च के लिए धन राशि देनी पड़ती है।

पश्चिमी बंगाल

इस राज्य में ३५,६०३ ग्राम हैं। परन्तु केवल ४७७ ग्रामों के लिए पंचायतें बनाई गई हैं।

पहले इस राज्य में यूनियन बोर्ड ही पंचायतों द्वारा अपेक्षित कार्य करते थे। एक यूनियन बोर्ड लगभग १०,००० जनसंख्या के लिए होता है। इनकी आय ५० लाख के निकट होती है जिसमें से २५ लाख चौकीदारा पर और १७ लाख अन्य प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यों पर खर्च हो जाता है। शेष विकास कार्यों के लिए रह जाता है।

अब ६०० से १००० की जनसंख्या वाले ग्राम या ग्राम समूह के लिए पंचायत बनाई जाती है। मतदाताओं की आम बैठक में हस्त प्रदर्शन द्वारा चुनाव होता है। चुनाव वयस्क मतदान

पर आधारित है। पंचायत बोर्ड ही प्रधान को चुनता है।

कोई संबंधित अधिनियम न होने के कारण इनको कोई कानूनी अधिकार प्राप्त नहीं हैं। इन्होंने ग्राम संचार-साधनों, वनों की सफाई, जल प्रबन्ध तथा शिक्षा सुधार का कार्य आरंभ किया है।

प्राय के साधन

कोई वैधानिक अधिकार प्राप्त न होने के कारण पंचायतें कर नहीं लगा सकतीं। उन्हें राज्य की ओर से १४० रुपया प्रारम्भिक अनुदान के रूप में मिलता है।

पंचायतें कुछ रुपया अंशदान व श्रमदान से इकट्ठा करती हैं। १४० रुपये के उपरोक्त सरकारी अनुदान में से १०० रुपये ग्रामहित योजनाओं पर, २० रुपये चुनाव के खर्च पर तथा २० रुपये लेखन सामग्री व आकस्मिक खर्च के लिए होते हैं।

अन्य पहलू

पंचायतों पर स्थानीय स्वशासन विभाग की ही निगरानी है। कोई नियंत्रण नहीं है। चुनाव की देख-रेख जिलाधीश करता है। उनके युक्त खर्च की भी वही देख-रेख करता है।

पेप्सू

इस राज्य का पूरा नाम पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ है। इस राज्य में ५,११६ ग्राम हैं। इनमें से ४,४७४ गांवों में पंचायतें हैं। इसके अतिरिक्त १,००८ नगर पंचायतें हैं और २१४ अदालती पंचायतें हैं। इस राज्य का पंचायत राज अधिनियम सन् १९५१ में पास हुआ और २८ जुलाई १९५३ को लागू हुआ।

ग्राम पंचायत

१५०० जनसंख्या के ग्राम या ग्राम समूह के लिए क्षेत्र के सब वयस्कों की, एक संबद्ध निकाय बनाई जाती है जिसे नगर सभा कहते हैं। इस सभा की कार्यकारिणी को ग्राम-पंचायत कहते हैं। इसके सदस्यों की संख्या ५ से ६ तक होती है। यह नगर सभा उप-समितियाँ भी बना सकती है। सरपंच अर्थात् प्रधान का चुनाव सब वयस्क करते हैं। ग्राम पंचायत के सदस्यों का चुनाव सब वयस्क करते हैं। ग्राम पंचायत के सदस्यों को नाम निर्देशन पत्र के साथ ५ रुपये, सरपंच के पद के लिए १० रुपये और न्याय पंचायत के पद के लिए १० रुपये शुल्क भी देना पड़ता है।

अधिकार तथा कर्तव्य

अनिवार्य कर्तव्य हैं—सार्वजनिक सड़कों और बाँधों की सुरक्षा, निर्माण व जीर्णोद्धार, पानी देने के साधनों व नलों आदि की सफाई, वृक्षारोपण, सार्वजनिक उपयोग के लिए भवन निर्माण, ग्रामोद्योगों का विकास, जन्म-मरण का पंजीयन, सड़कों पर रोशनी, महामारियों तथा संक्रामक रोगों का निरोध व निवारण, गाँव की सुरक्षा के लिए स्वयंसेवक दल का संगठन, मेलों, हाटों, बाजारों का प्रबन्ध, खाद संग्रह स्थानों का निर्धारण आदि। ऐच्छिक कार्यों में डाक्टरों की सहायता, शिशु कल्याण, सार्वजनिक मेले, कृषि-ऋण प्रोत्साहन, सुधरे बीज के भण्डारों का आयोजन, खाद-प्रबन्ध, अकाल पीड़ितों की सहायता, पशु वंश सुधार, शिक्षा तथा घरेलू उद्योगों की वृद्धि, आदि हैं।

ये सामाजिक, नैतिक तथा लोक हितकारी कार्यों को

अपने हाथ में ले सकती हैं। जुर्माने और कर भी वसूल कर सकती हैं और सरकार के साथ इस विषय में ठेका भी कर सकती हैं।

आय के साधन

सरकारी अनुदान, जुर्माने, शुल्क तथा स्वास्थ्य कर, उद्योग और व्यापार कर, पुरुष के विवाह कर, लड़का पैदा होने पर कर, श्रमकर, सम्पत्ति के हस्तान्तरण पर कर, कूड़ा-मिट्टी, गोबर का विक्रय, आदि। इसके अतिरिक्त न्याय पंचायतों के जुर्मानों की रकम सम्मिलित ग्राम सभाओं में समान रूप से बाँटी जाती है। सरकार अपनी मालगुजारी का $\frac{1}{3}$ भाग पंचायतों को देती है।

न्याय पंचायतें

पंचायती अदालत ७५०० की जनसंख्या के लिए होती है। हर ऐसी पंचायत के ५ पंच होते हैं जिनका निर्वाचन नगर पंचायतों द्वारा होता है। यह पंच अपना सरपंच स्वयं चुनते हैं। न्याय-पंचायतों को उत्तर प्रदेश जैसे ही दीवानी, फौजदारी तथा मालगुजारी मुकदमे सुनने के अधिकार प्राप्त हैं। न्याय पंचायतों की दो श्रेणियाँ हैं। अभी तक सब द्वितीय श्रेणी की ही हैं। हर ग्राम पंचायत में एक समझौता बोर्ड है। सब मामले पहले उसी के पास जाते हैं। यदि समझौता न हो सके तो ३० दिन के अन्दर उन्हें इस विषय का प्रमाण पत्र देना पड़ता है, मुकदमा इसके बाद ही दायर हो सकता है। द्वितीय श्रेणी की पंचायतों को २०० रुपये तक के दीवानी तथा १०० रुपये तक के मालगुजारी के मामले सुनने के अधिकार हैं। प्रथम श्रेणी की पंचायतों को ५०० रुपये तक दीवानी व २०० रुपये तक मालगुजारी के मामले सुनने के

अधिकार हैं। प्रथम श्रेणी की पंचायतें २०० रुपये तक तथा द्वितीय श्रेणी की १०० रुपये तक जुर्माना कर सकती हैं। प्रथम श्रेणी की न्याय पंचायतों को फौजदारी के भी अधिक अधिकार प्राप्त हैं। सरकारी अधिकारियों को अपील व निगरानी के अधिकार हैं। राज्य को पंचायतें भंग करने के भी अधिकार हैं।

बंबई

बंबई राज्य में ३६,३८६ ग्राम हैं। जून १९५३ के अंत तक ५,६३६ पंचायतें बन चुकी थीं। पहला ग्राम पंचायत अधिनियम १९३३ में पास हुआ था। १९३६, १९४७, १९५१ तथा १९५३ में इसको संशोधित किया गया।

ग्राम पंचायत

२००० तथा उससे अधिक जनसंख्या वाले ग्रामों में पंचायतों की स्थापना आवश्यक है। एतदर्थ २ या ३ ग्रामों को मिलाया जा सकता है। वयस्क मताधिकार के अनुसार गुप्त मतदान द्वारा निर्वाचन होता है। चुनाव तिथि के आठ सप्ताह के भीतर यदि आवश्यक संख्या पूरी नहीं होती तो जिला बोर्ड की स्थायी समिति इस संख्या की पूर्ति नियुक्ति द्वारा कर देती है। सरपंच का चुनाव पंच आपस में करते हैं। यदि उक्त बोर्ड की समिति संख्या पूर्ति के लिए नियुक्ति न करे तो जिलाधीश नियुक्ति कर सकता है।

कर्तव्य व अधिकार

इनके अनिवार्य कार्य हैं—सार्वजनिक पथों और नालियों की सफाई, निर्माण तथा मरम्मत (बशर्ते कि ये कार्य कोई और निकाय न कर रही हो)। सार्वजनिक स्वास्थ्य व जल की सुरक्षा

व सुधार का काम भी इन्हीं के सुपुर्द हैं ।

फसलों से सम्बन्धित प्रयोग कार्य, निस्सहाय और पीड़ितों की सहायता, ग्राम पुस्तकालयों तथा पाठगृहों का प्रबन्ध, पशु वंशोन्नति, सहकारी खेती, वृक्षारोपण, कुटीर उद्योग विकास, धर्मशालाओं का निर्माण व संरक्षण, घाटों का प्रबन्ध व नियंत्रण, ग्राम तथा फसलों की सुरक्षा, इनके ऐच्छिक कार्यों में हैं । पंचायत ३ बहुमत द्वारा प्रस्ताव पास करके प्रदर्शनियाँ भी कर सकती है परन्तु इस पर २५ रुपये से अधिक खर्च नहीं किया जा सकता ।

ग्राय के साधन

शुल्क, कर और सरकारी अनुदान; भवनों, खेतों तथा भूमि पर कर । यह कर नकद या सामान के रूप में दिये जा सकते हैं । तीर्थ यात्राओं, मेलों, त्योहारों तमाशों तथा बिक्री पर भी कर तथा शुल्क लगाये जा सकते हैं । मालगुजारी का १५ प्रतिशत अथवा उपकर का २५%, जो भी अधिक हो, पंचायतों को मिलता है । ग्राम पंचायतों के सचिवों के वेतन का ३ सरकार अनुदान के रूप में देती है । इसके अलावा १०० रुपये का प्रारम्भिक अनुदान भी हर पंचायत को दिया जाता है ।

न्याय पंचायतें

प्रत्येक ग्राम पंचायत अपने में से पाँच सदस्यों की न्याय पंचायत चुन लेती है । सभापति उनमें से ही चुना जाता है । तीन सदस्य गणपूर्ति करते हैं । ग्राम पंचायत का सचिव न्याय पंचायत के क्लर्क का भी काम करता है ।

ये पंचायतें फौजदारी के छोटे-छोटे मुकदमे सुन सकती

हैं। १०० रुपये तक के दीवानी व साधारण फौजदारी वाद सुन सकती हैं। भूठे वादों में पंचायतें मुआवजा भी दिलवा सकती हैं। पंचायतें फौजदारी मुकदमों में ४० रुपये तक दण्ड दे सकती हैं, पर कारावास का दण्ड नहीं दे सकतीं। किसी मुकदमे में दिलचस्पी रखनेवाले सदस्य उसकी सुनवाई में नहीं बैठ सकते। अपील के अधिकार जिला न्यायालयों को हैं। इस अपील का निर्णय अन्तिम होता है। पंचायतों का पृथक विभाग नहीं है। जिलाधीश ही निरीक्षण आदि करता है।

बिहार

इस राज्य में ग्रामों की संख्या ७१,३१८ है। २५,५०० ग्रामों के लिए ४,०८७ अधिकृत और ६,२०० ग्रामों के लिए २,०६३ अनधिकृत पंचायतें हैं। बिहार में स्थानीय स्वशासन अधिनियम १८५५ में बना था परन्तु प्रचलित पंचायत राज अधिनियम १९४७ में पास हुआ था। बाद में इसमें कुछ संशोधन भी हुए हैं।

ग्राम पंचायतें

उत्तरी और दक्षिणी जिलों में ४००० जनसंख्या के ग्राम अथवा ग्राम समूह के लिए, और छोटा नागपुर प्रदेश में २४०० की जनसंख्या के लिए एक ग्राम सभा बनाई जाती है। पहले १०८० जनसंख्या के लिए एक पंचायत बनाई जाती थी। इसकी कार्यकारी संस्था—ग्राम-पंचायत—के ७ से १५ सदस्य तक होते हैं। मुखिया वयस्क मताधिकार के अनुसार गुप्त मतदान द्वारा चुना जाता है और वह नाम निर्देशन द्वारा अपनी कार्यकारिणी के ७ से १५ तक सदस्य नियुक्त करता है। इसी पद्धति के अनुसार १५ पंच चुने जाते हैं जो अपना सरपंच चुन लेते हैं और यह ग्राम

कचहरी बन जाती है। इस राज्य में एक अद्भुत बात यह है कि वैध पंचायत बनाने से पूर्व जनता के उत्साह पर आधारित अनधिकृत पंचायत बनाई जाती है। यदि वह रचनात्मक कार्य करने में सफलता दिखाये तो उसे अधिकृत बना दिया जाता है।

कर्त्तव्य व अधिकार

सफाई, संरक्षण, डाक्टरी मदद, जल प्रबन्ध, जल-स्रोतों की सफाई, ग्राम पथों की सफाई व संरक्षण, सिंचाई की देख-रेख महामारियों तथा संक्रामक रोगों का निरोध, आदि पंचायतों के अनिवार्य कर्त्तव्य हैं और सड़कों पर रोशनी, कुएं, तालाब आदि बनाना, सहकारी खेती, प्रसूति तथा शिशु-कल्याण, उत्सव तथा आमोद-प्रमोद आदि कार्य उनके ऐच्छिक कार्य हैं।

आय के साधन

ग्राम पंचायतों को कर लगाने के स्वतंत्र अधिकार दिये गये हैं, यथा श्रम कर, सम्पत्ति कर, व्यवसाय कर, यान-कर, बिक्री के सामान पर कर, पानी, प्रकाश, पाखाना व यात्रियों पर कर। इनके अतिरिक्त हर पंचायत को ५० रुपये प्रारम्भिक अनुदान भी राज्य द्वारा मिलता है।

न्याय पंचायतें

प्रत्येक ग्राम-पंचायत में उपरोक्त विधि से निर्वाचित ग्राम कचहरी ही ग्राम पंचायत की न्याय पंचायत का कार्य करती है। राज्य में कुल ३,७१३ ऐसी ग्राम कचहरियाँ हैं। ग्राम-पंचायत का सदस्य ग्राम कचहरी का सदस्य नहीं हो सकता। हर वाद सरपंच के सामने पेश होता है। वह उसकी सुनवाई के लिए एक पीठिका नियुक्त करता है जिसमें एक-एक पंच दोनों पक्षों के

प्रस्तावानुसार होता है। पंचायतों का क्षेत्राधिकार १०० रुपये तक के दीवानी तथा साधारण किस्म के फौजदारी मुकदमों तक है। चोरी आदि के मामलों में ये ५० रुपये तक की सम्पत्ति के अभियोग सुन सकती हैं। पीठिका समझौता कराने की कोशिश करती है। अपील सरपंच की अध्यक्षता में पूरी पीठिका सुनती है।

यदि कोई पक्ष या व्यक्ति आज्ञानुसार उपस्थित न हो तो उससे जमानत ली जा सकती है। जिला बोर्ड पृथक् हैं। उनकी पंचायत समिति अपने कामों में से कुछ कार्य पंचायत को सौंप सकती है। निरीक्षण कार्य माल-विभाग के जिलाधिकारी ही करते हैं। पर यह अपर्याप्त है।

भोपाल

इस राज्य में २,६१६ ग्राम हैं जिनमें से १८०८ ग्राम पंचायतों के अधीन हैं। पहला पंचायत अधिनियम नवाब साहब के फरमान से १६४७ में पास हुआ था। दूसरा अधिनियम १६५३ में विधान सभा द्वारा स्वीकार किया गया।

ग्राम-पंचायतें

हर राजस्व वृत्त (रेवेन्यू सर्किल) के लिए एक पंचायत बनाई जाती है जिसमें साधारणतः ५ गाँव और ५०० से ३००० तक जनसंख्या होती है। क्षेत्र को निर्वाचन क्षेत्रों में बाँटा जाता है ताकि सब ग्रामों का प्रतिनिधान हो सके। हरिजनों के लिए स्थान सुरक्षित हैं। सदस्यों की संख्या १० से २० तक होती है। हर १००० के लिए १० और उससे अधिक हर सौ के लिए एक सदस्य लिया जाता है। चुनाव हस्त प्रदर्शन द्वारा होता है।

पंचायतों के कर्तव्य व अधिकार

सड़कों का निर्माण, मरम्मत तथा संरक्षण, डाक्टरी मदद, संक्रामक रोगों की रोक-थाम, सफाई, अपने अधिकार में आई हुई संपत्ति को देख-रेख, जन्म-मृत्यु और विवाहों का पंजीयन, हाटों तथा मेलों का नियमन, प्राथमिक शिक्षा की उन्नति, व्यापार, वाणिज्य, कृषि तथा उद्योग को सहायता, प्रसूति, शिशु-कल्याण, सहकारी खेती प्रोत्साहन, पीड़ितों की सहायता, आदि पंचायतों के अनिवार्य कार्य हैं।

ऐच्छिक कार्य ये हैं—वृक्षारोपण, पशु वंशोन्नति, गन्दे गढ़ों की भराई, समतलीकरण, ग्राम सुरक्षा, स्वयंसेवक दलों का संगठन, बीजों तथा कृषि उपकरणों के भण्डार खोलना, आमोद-प्रमोद के साधन जुटाना, सामाजिक एकता संस्थापन, आदि।

आय के साधन

मालगुजारी पर —) प्रति रुपया के दर से कर, व्यापारों, तथा व्यवसायों पर कर, बिक्री पर कर, बिक्री के पशुओं के पंजीयन पर कर, यान कर, बारबरदारी के पशुओं पर कर, कुलियों पर कर, पाखानों पर कर, रोशनी पर कर तथा राज्य द्वारा अन्य स्वीकृत कर, शुल्क, जुर्माने, भेंट, आदि आय के साधन हैं।

न्याय पंचायतें

विधान में पंचायतें बनाने का क्रम उत्तर प्रदेश की भाँति हो है। परन्तु अभी न्याय पंचायतें नहीं बनी हैं। अपील के अधिकार जिला न्यायालय को हैं।

भोपाल में पंचायत विभाग एक पृथक विभाग है।

मद्रास

मद्रास में कुल १६,४८६ गाँव हैं। इनमें से ७००० ग्राम

पंचायतों के अधीन आते हैं। इस राज्य में कुछ पंचायतों की सबसे पहले स्थापना स्थानीय बोर्ड अधिनियम के अन्तर्गत हुई थी। १८८८ में पास हुए मद्रास ग्राम पंचायत अधिनियम के अन्तर्गत इन्हें कुछ न्याय-सम्बन्धी अधिकार भी दिये गये। १९५० में एक और अधिनियम—मद्रास ग्राम पंचायत अधिनियम १९५०—पास हुआ। १९५१ में यह संशोधित किया गया।

ग्राम पंचायतें

१९५० के अधिनियम के अनुसार हर ५०० की जनसंख्या के पीछे एक पंचायत बनाई जाती थी। किन्तु अब यह संख्या १००० कर दी गई है। लेकिन १९२० के स्थानीय बोर्ड अधिनियम के अन्तर्गत बनी पंचायतें कायम रहने दी गई हैं। ये पंचायतें राजस्व वृत्तों को मिलाकर बनाई गई हैं। इसके अनुसार पंचायतें दो श्रेणियों की हैं। हर ५००० की जनसंख्या और १०,००० रुपये के राजस्व (मालगुजारी) क्षेत्र पर एक प्रथम श्रेणी की पंचायत होती है। शेष सब पंचायतें दूसरी श्रेणी में आती हैं। प्रथम श्रेणी की पंचायतों के चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर गुप्त मतदान द्वारा होते हैं और द्वितीय श्रेणी के हस्त प्रदर्शन द्वारा। पंचायत क्षेत्र चुनाव क्षेत्रों में विभाजित कर दिया जाता है। सरपंच का चुनाव समस्त मतदाता करते हैं। पंचायत सदस्यों की संख्या ५ से १० तक होती है।

अधिकार तथा कर्त्तव्य

पंचायतों के अनिवार्य कार्य हैं—सार्वजनिक सड़कें बनाना तथा उनकी मरम्मत, सार्वजनिक स्थानों में प्रकाश का प्रबन्ध, सार्वजनिक तथा निजी पाखानों का प्रबन्ध, जल व्यवस्था, कूप-

निर्माण, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा उपचार ।

इसके अतिरिक्त सिंचाई का प्रबन्ध तथा लेखों के पंजीयन और अरक्षित वनों का प्रबन्ध भी पंचायतों के ही पास है ।

आय के साधन

आय के मुख्य साधन हैं जमीन के सालाना लगान पर ६ पाई प्रति रुपया के हिसाब से भूमि शुल्क और पंचायत क्षेत्र-ान्तर्गत भूमि के हस्तान्तरण पर कर । इनके अतिरिक्त व्यवसायों, मकानों तथा गाड़ियों पर अनिवार्य कर, बाजारों पर शुल्क, राजस्व का १२½ प्रतिशत भाग (जिसमें जल शुल्क भी शामिल है) द्वितीय श्रेणी की पंचायतों को अनुदान स्वरूप दिया जाता है । कई आपत्तिजनक कार्यों पर लायसेंस फीस भी ली जा सकती है । सरकार की ओर से विशेष कार्यों के लिए अनुदान भी दिये जाते हैं ।

न्याय पंचायत

पंचायत अधिनियम में न्याय पंचायतों के लिए कोई प्रावधान नहीं है । परन्तु १८८८ के ग्राम पंचायत अधिनियम के अन्तर्गत आनेवाले मुकदमे पंचायतों के नीचे हैं । आर्थिक क्षेत्र-धिकार ४० रुपये से १०० रुपया कर दिया गया है । विभिन्न अपराधों के लिए ५०० रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है । गैर-कानूनी तौर पर बनाये गये कारखाने पर १०० रुपया जुर्माना किया जा सकता है ।

स्थानीय स्वशासन का पृथक विभाग है । पंचायतें उसी के अधीन हैं । पंचायत इन्स्पैक्टर ठीक काम न करनेवाली पंचायत को भग कर सकता है ।

मध्य प्रदेश

इस राज्य में ४८,००० ग्राम हैं जिनमें ८००० ग्राम पंचायती क्षेत्र में आ चुके हैं। पंचायत राज सम्बन्धी वर्तमान अधिनियम १९४६ में पास हुआ था। तब से १९५३ तक यह आठ बार संशोधित हो चुका है।

ग्राम पंचायतें

५०० से १००० तक की आबादीवाले गाँव में पंचायत स्थापित करने का प्रावधान है। चुनाव वयस्क मताधिकार तथा गुप्त मतदान की पद्धति से होता है। १९४६ तक सरपंच मनोनीत होते थे, परन्तु अब वे चुने जाते हैं।

अधिकार व कर्तव्य

पंचायतों को प्रशासन तथा विकास सम्बन्धी व्यापक अधिकार दिये गये हैं। चिकित्सा सम्बन्धी प्राथमिक सहायता, जन्म, मरण तथा विवाहों का पंजीयन, जल प्रबन्ध, सफाई, पथों का निर्माण तथा उनकी हिफाजत, आदि उनके अनिवार्य कार्य हैं और कृषि, पशु-सुधार, बीज भण्डारों का आयोजन, शिक्षा की उन्नति, घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन तथा सार्वजनिक स्थानों पर प्रकाश का प्रबन्ध, आदि इनके ऐच्छिक कार्य हैं।

आय के साधन

भूमि कर पर ६ पाई प्रति रुपया शुल्क, मकानों और कृषि-विहीन भूमि पर २) से ८०) तक वार्षिक कर और व्यवसायों पर ॥) से ५) तक, दलालों से १) से ३०) तक अनिवार्य वार्षिक कर। गाड़ीयों, बारबरदारी के पशुओं, बाजारों तथा पानी पर वैकल्पिक कर लगाये जा सकते हैं। कभी समाप्त न होनेवाली

एक ग्राम विकास निधि का भी प्रावधान है जिसमें से पंचायत ऋण ले सकती है। सरकार प्रारम्भ में ग्राम पंचायतों को २०० रुपया और न्याय पंचायतों को ३०० रुपया अनुदान देती है।

न्याय पंचायतें

कम-से-कम तीन ग्राम पंचायतों को मिला कर एक पंचायत क्षेत्र बनाया जाता है। इसमें २०-३० गैर-पंचायती ग्राम भी आ जाते हैं। प्रत्येक ग्राम पंचायत न्याय पंचायत निधि में अंशदान देती है। यदि उसकी आय १० रुपये तक हो तो अंशदान आय का $\frac{1}{2}$ और इससे अधिक हो तो आय का $\frac{1}{3}$ होता है। जुमनि की आय न्याय पंचायत को जाती है। न्याय पंचायत के पंच ग्राम पंचायतों से शैक्षणिक योग्यता, सामाजिक स्तर, सचाई, तथा ईमानदारी आदि के आधार पर नामजद किये जाते हैं। इनको १०० रुपये तक के दीवानी मुकदमे सुनने का अधिकार है। पक्षों की अनुमति से यह अधिकार ५०० रुपये तक बढ़ाया जा सकता है। फौजदारी मामलों में अन्य राज्यों के समान अधिकार होते हैं। ५० रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है। यह दण्ड सीमा तक राज्य सरकार १०० रुपये बढ़ा सकती है। अन्य राज्यों की तरह वकील पैरवी नहीं कर सकते।

ग्राम पंचायतों पर निरीक्षण और नियंत्रण रखने का काम जनपद सभाओं को दिया गया है।

मध्य भारत

मध्य भारत में २१,६०० गाँव हैं। प्रायः सभी गाँव पंचायतों के अधीन हैं।

पहला पंचायत सम्बन्धी कानून १९४६ में पास हुआ था।

इसमें १९५०, १९५१ और १९५३ में संशोधन किये गये ।

ग्राम पंचायतों का विधान

इस राज्य में पंचायतों की तीन श्रेणियाँ हैं । साधारणतः १००० आबादीवाले प्रत्येक गाँव के लिए एक पंचायत है । कम आबादीवाले गाँवों को मिलाकर समूह बनाये गये हैं । प्रत्येक राजस्व-निरीक्षक के क्षेत्र के लिए एक केन्द्र पंचायत है । ऐसे इलाके में एक न्याय पंचायत भी होती है । हरेक जिले के लिए एक मण्डल पंचायत है ।

मतदाताओं की आम बैठक में हाथ दिखलाकर वयस्क मताधिकार के अनुसार पंचायतों के चुनाव होते हैं । ग्राम पंचायत के पंचों में से ही केन्द्र-पंचायत के सदस्यों के लिए चुनाव होते हैं । मण्डल पंचायत में केवल केन्द्र पंचायतों के सरपंच ही होते हैं । केन्द्र पंचायतों में सरपंच ही होते हैं । केन्द्र और न्याय पंचायतों के चुनाव गुप्त मतदान द्वारा होते हैं ।

ग्राम पंचायत का सरपंच पंचों द्वारा चुना जाता है । मण्डल पंचायत का सरपंच केन्द्र पंचायतों के पंचों द्वारा चुना जाता है ।

ग्राम प्रबन्ध के अधिकार

तीनों पंचायतों के कार्य भी तीन श्रेणियों में विभाजित हैं ।

गाँव की सड़कों तथा केन्द्र व मण्डल पंचायतों के क्षेत्राधिकार में आनेवाली सड़कों का निर्माण, उनकी हिफजात व मरम्मत, सफाई-सुथराई, जंगली जानवरों का विनाश, महामारियों की रोकथाम और उनका निवारण तथा जल प्राप्त करनेवाले साधनों की देख-रेख ग्राम पंचायतों के अनिवार्य कार्य हैं । ऐच्छिक कार्यों में आरामगाहों का निर्माण और उनकी

हिफाजत, पेड़ लगाना, सड़कों पर रोशनी, कसाईखानों, तथा सार्वजनिक पाखानों की देख-रेख, खाद बनाना और सार्वजनिक स्वास्थ्य व लोकहित सम्बन्धी अन्य कार्य शामिल हैं ।

केन्द्र पंचायतों के अनिवार्य कार्यों में प्रौढ़-शिक्षा का प्रबन्ध, काँजी हौसों का प्रबन्ध, कृषि और मवेशियों की नस्ल में सुधार, ग्रामोद्योगों का विकास, मृत्यु, जन्म और विवाहों का पंजीयन, पशु गणना, अपने इलाके में पहरेदारों का संगठन, नये मकानों के निर्माण और पुराने मकानों की मरम्मत पर नियंत्रण, व्यापार का विकास, ग्राम विकास सम्बन्धी योजनाएं बनाना; ग्राम पंचायतों को उनके इलाके में मदद देना और उनकी मुश्किलें दूर करना आदि काम शामिल हैं । ऐच्छिक कार्यों में बीमारों की मदद; हानिप्रद व्यवसायों पर नियन्त्रण; सरकार से कर्ज लेने और उसके विभाजन में पंचायतों की मदद; उन्नत बीजों के प्रयोग और उनकी प्राप्ति को लोकप्रिय बनाना; मरे हुए लावारिस जानवरों को निबटाना और लोक हित के अन्य कार्य शामिल हैं ।

मण्डल पंचायत के अनिवार्य कार्यों में सरकारी अस्पतालों व काँजी हौसों का प्रबन्ध और नये हौस व अस्पताल खोलना; प्रदर्शनियों और मेले-तमाशों का संगठन; अपने क्षेत्राधिकार में जनहित के लिए सड़कों का निर्माण; अकाल व अन्य विपत्तिकाल में सहायता पहुँचाना; महामारी के समय डाक्टरों की मदद और रोग निवारणात्मक सहायता देना; टीके लगाना; कृषि के उद्योग व व्यापार-विकास के लिए योजना बनाना; केन्द्र पंचायतों को सहायता व प्रोत्साहन प्रदान करना; केन्द्र पंचायतों के कार्य का अधीक्षण व निरीक्षण; महत्वपूर्ण आँकड़े इकट्ठे करना और अन्य मंडल

पंचायतों के सहयोग से विकास कार्य करना शामिल हैं । इनके ऐच्छिक कार्यों में संक्रामक रोगों से पीड़ित लोगों को अलग रखने का प्रबन्ध, वृद्ध और अशक्त लोगों के लिए गृह खोलना और प्रसूति-गृह तथा लोक हित सम्बन्धी अन्य कार्य शामिल हैं ।

आय के साधन

पंचायतों की आय के मुख्य साधन हैं अनिवार्य एवं वैकल्पिक कर तथा सरकारी अनुदान ।

ग्राम पंचायतों के अनिवार्य करों में दो पैसा प्रति रुपया के हिसाब से लगाया गया भूमि-कर, भूमि-कर देनेवाले उन लोगों से मकान कर जिनका मकान कर भूमि-कर से कम है और साल में कम-से-कम पाँच दिन की मजदूरी के हिसाब से लगाया गया सब वयस्कों पर मजदूरी-कर शामिल हैं । वैकल्पिक करों में भाड़े पर चलाई जानेवाली गाड़ियों पर शुल्क; आरामगाहों, कसाईखानों तथा पानी और सामान ढोनेवाले जानवरों पर कर; रोशनी और नालियों पर कर; व्यापारों और व्यवसायों पर—जैसे दलालों पर—कर । सिनेमा तथा सरकस जैसे सार्वजनिक आमोदों पर भी कर लगाये जा सकते हैं ।

उपर्युक्त कर ग्राम, केन्द्र या मंडल पंचायतों के बीच बँटे हुए हैं । मंडल द्वारा लगाये गये कर केन्द्र या ग्राम पंचायत द्वारा भी नहीं लगाये जा सकते । यदि आरंभ में ग्राम पंचायत द्वारा कोई कर लगाया गया हो और बाद में वही कर केन्द्र या मण्डल द्वारा लगा दिया गया हो तो ग्राम पंचायत द्वारा लगाया गया कर समाप्त हो जाता है ।

भूमि कर के बराबर ही सरकारी सहायता दी जाती है ।

भूमि-कर बराबर-बराबर तीन भागों में बाँटा जाता है। ग्राम, केन्द्र और मण्डल पंचायतों को एक-एक भाग दिया जाता है। यदि ग्राम-पंचायत द्वारा कोई वैकल्पिक कर लगाया जाता है तो उस कर की सारी रकम ग्राम-पंचायत को मिलती है। यदि यह कर केन्द्र द्वारा लगाया गया हो तो कर की रकम केन्द्र और ग्राम-पंचायतों में बँट जाती है, किन्तु यदि यह कर मण्डल द्वारा लगाया गया हो तो कर की रकम मण्डल, केन्द्र और ग्राम पंचायतों में बराबर बँट जाती है।

न्याय पंचायत

प्रत्येक केन्द्र व ग्राम पंचायत के लिए एक न्याय पंचायत होती है। न्याय पंचायत के सदस्य ग्राम-पंचायत के सदस्यों में से गुप्त-मतदान द्वारा चुने जाते हैं किन्तु यदि निर्वाचन के बाद भी कोई स्थान रिक्त रह जाता है तो नाम निर्देशन द्वारा उसे भर दिया जाता है। इस समय प्रत्येक न्याय पंचायत के वृत्त में लगभग १८ गाँव हैं किन्तु २००० से अधिक आबादीवाले गाँवों में न्याय पंचायत की स्थापना के लिए सरकार अधिकार प्रदान कर सकती है।

न्याय पंचायत के सदस्यों की संख्या ५ और ११ के बीच होती है। यह एक पृथक निकाय है और इसकी पदावधि एक वर्ष है। केन्द्र पंचायत के क्षेत्रधिकार में आनेवाली ग्राम-पंचायतों के पंचों द्वारा न्याय पंचायत का सरपंच चुना जाता है। इस समय प्रति वर्ष न्याय पंचायतों का चुनाव होता है। उनकी पदावधि तीन वर्ष कर दिये जाने का सुझाव पेश किया गया है।

अधिकार

संहितानुसार धन, चल सम्पत्ति की पुनःप्राप्ति और १४०,

१६०, १७६, २७७, २७६, २८३, २८६, २९०, २९४, ३४१, ३५६, ३७४ और ४११ वीं धाराओं के अन्तर्गत फौजदारी मुकदमों में अनुचित रूप से फँसाये जाने के कारण प्रतिकर के लिए किये गये दावों की सुनवाई पंचायतें कर सकती हैं। ४२६, ४२८, ४३०, ४४७, ४४८, ५०४, ५०६, ५०९ और ५१० वीं धाराओं के अन्तर्गत ५० रुपये तक के मुकदमे लिये जा सकते हैं। पंचायतें जुर्माना कर सकती हैं पर कैद की सजा नहीं दे सकतीं। मतभेद होने पर बहुमत का मत मान्य होता है। न्याय पंचायतों में कोई वकील पैरवी नहीं कर सकता। न्याय पंचायत का निर्णय अन्तिम होता है। न्याय पंचायत के निर्णय के विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती, किन्तु जिलाधीश या जिला न्यायाधीश द्वारा निर्णय का पुनरीक्षण किया जा सकता है।

पंचायतों के कार्य पर रिपोर्ट

कुल मिलाकर देखा जाये तो पंचायतों का कार्य सन्तोषजनक रहा है। अधिनियम को संशोधित करने का प्रस्ताव है, ताकि ग्राम पंचायतें एक ऐसी उप-समिति स्थापित कर सकें कि जो ग्राम-विकास समिति के रूप में काम कर सकें। न्याय पंचायतों पर धीमी गति से काम करने का अभियोग लगाया गया है। पर दलबन्दी सामने नहीं आई है। केन्द्रों के आकार को छोटा बनाने और न्याय पंचायत को सम्मुख उपस्थित होने से बचनेवाले व्यक्तियों के लिए न्याय पंचायतों को जामिन अधिपत्र जारी करने का अधिकार होता है। प्रत्येक केन्द्र पंचायत में एक वैतनिक-मन्त्री, होता है। पंचायतें ४० रुपये तक के कर्मचारी नियुक्त कर सकती हैं। पंचायतों और सहकारी कार्य के लिए एक ही विभाग है।

हर एक जिले में एक जिला विकास अधिकारी होता है। प्रत्येक वृत्त में निरीक्षक होते हैं जो पंचायतों के काम का निरीक्षण और अधीक्षण करते हैं। यदि पंचायतों का काम ठीक न हो तो सरकार उन्हें स्थगित व भंग कर सकती है। ग्राम पंचायत के स्थगित हो जाने पर केन्द्र पंचायत उसका काम करती है। पंचायत संगठन प्रादेशिक विभाजन पर आधारित है। केन्द्र पंचायतों से न्याय-पंचायतों के सदस्य चुने जाने का प्रश्न विचाराधीन है।

मैसूर

इस राज्य में १६,४३६ ग्राम हैं जिनमें से १२,६०६ पंचायतों के अधीन हैं। पंचायत संबंधी पहला विधान १९२६ में पास हुआ था। जिला बोर्ड तथा पंचायतों के लिए एक संयुक्त कानून १९५२ में पास किया गया था।

ग्राम पंचायतें

इस अधिनियम के अधीन २००० से ५००० तक की जनसंख्या के ग्रामों या ग्राम समूहों के लिए पंचायतें कायम की गई हैं। परन्तु अपवादस्वरूप २००० से कम जनसंख्या के लिए भी पंचायतें बनाई जा सकती है। वयस्क मताधिकार और गुप्त मतदान तथा हस्त प्रदर्शन द्वारा—दोनों तरह से—मतदान होता है। २५ वर्ष से कम आयुवाला कोई व्यक्ति चुनाव में खड़ा नहीं हो सकता। सदस्यों की संख्या १० से २० तक होती है। हर गाँव से कम-से-कम एक सदस्य लिया जाता है। हरिजनों के लिए स्थान सुरक्षित हैं।

कर्त्तव्य व अधिकार

सड़कों व पुल-पुलियों का निर्माण तथा देख-भाल और

मरम्मत, नालियों का निर्माण व सफाई, सड़कों की सफाई, कुओं-तालाबों का निर्माण, दूकानों, मकानों व आमोद-प्रमोद के साधनों का नियमन, मरघटों का प्रबन्ध, काँजी हौस का प्रबन्ध, संक्रामक रोगों व महामारियों का निरोध व निवारण, सार्वजनिक स्वास्थ्य-सुधार व पोषण, खाद जमा करने के लिए जगह बनाना, पेड़ लगाना, मेलों तथा चरागाहों का नियमन, अनुसूचित जातियों का हित, होटलों तथा चमड़ा पकाने व रंगने के स्थानों का नियमन, ग्राम विस्तार कार्य, गन्दे गढ़ों को भरना, खाद इकट्ठा करना, आदि पंचायतों के अनिवार्य कार्यों में आ जाते हैं। ऐच्छिक कार्यों में निम्न कार्य हैं—यात्रियों, दरिद्रों तथा पीड़ितों की सहायता, शिक्षा, पुस्तकालयों का विकास, कृषि, सहकारिता, ग्रामोद्योग व व्यापार का विकास, सार्वजनिक स्थानों पर प्रकाश-प्रबन्ध, पशु-वंश सुधार, कसाईखाने बनाना, प्रसूति व शिशु कल्याण, डाक्टरी सहायता, गाँव के वनों का नियंत्रण व पोषण, ग्राम-सुरक्षा, शान्ति स्थापन, मानसिक चेतना जागृत करना आदि।

आय के साधन

शुल्क, जुमनि, कर तथा सरकारी अनुदान इनकी आय के साधन हैं।

राज्य के भू-राजस्व का १२½% भाग राज्य पंचायतों को देता है। दूकानों, व्यापारिक स्थानों, खाली जगहों, गाड़ियों, व्यवसायों, मेलों, उत्सवों आदि पर पंचायतें कर लगा सकती हैं। कर श्रम के रूप में भी लिया जा सकता है। यह प्रतिवर्ष ६ रुपये से १० रुपये तक हो सकता है।

इस राज्य में न्याय पंचायतें नहीं हैं।

राजस्थान

राजस्थान में कुल ३२,०४० गांव हैं जिनमें से १६,२४६ ग्रामों में पंचायतें स्थापित हो चुकी हैं। पंचायत संबंधी पहला कानून १९५३ में पास किया गया था।

ग्राम पंचायत ५००० जनसंख्या के ग्राम या ग्राम समूह के लिए बनाई जाती है। चुनाव वयस्क मताधिकार के अधीन हस्त प्रदर्शन द्वारा होता है। एक-एक सदस्य के लिए अलग-अलग चुनाव क्षेत्र बनाये जाते हैं। सरपंच सब मतदाताओं द्वारा चुना जाता है। यदि हरिजन सदस्य न चुना जा सके तो मनोनीत किया जाता है।

कर्तव्य व अधिकार

जलाशयों का निर्माण, संरक्षण तथा मरम्मत, सफाई-सुथराई, महामारियों व संक्रामक रोगों की रोक-थाम, डाक्टरी सहायता, अपनी सम्पत्ति की देख-रेख व मरम्मत, जन्म, मरण तथा विवाहों का पंजीयन, मरघटों का नियमन, चरागाहों का प्रबन्ध, कृषि, उद्योग व व्यापार का विकास, शिशु कल्याण, प्रसूति-गृहों का प्रबन्ध, पाखानों की देख-रेख व निर्माण, आदि इनके अनिवार्य कार्य हैं।

वृक्षारोपण, पशु वंश विकास, गन्दे गढ़ों को भरना, पहरे-दारी के लिए स्वयंसेवक दल का संगठन, सहकारिता का विकास, बीज सुधार तथा बीज भण्डारों का आयोजन, अकाल सहायता, सांडों की हिफाजत, निराश्रितों व पीड़ितों की सहायता, ग्रामोद्योग प्रोत्साहन, सद्भावना बढ़ाना, आदि पंचायतों के ऐच्छिक कार्यों में आते हैं।

आय के साधन

जुमाने, पशुओं के जलाशयों पर शुल्क, अदालती फीस, हड्डियों का विक्रय, पशु मेलों से आय, भू-राजस्व पर ३ पाई प्रति रुपया कर, लगान, आमोद-प्रमोद व संचार साधनों, उद्योगों तथा व्यवसायों पर कर, आदि इनकी आय के मुख्य साधन हैं।

सार्वजनिक कार्यों के लिए सरकार अनुदान भी देती है।

न्याय पंचायतें

यहाँ पृथक न्याय पंचायतें नहीं हैं। ग्राम पंचायतों को ही न्यायिक अधिकार प्राप्त हैं। न्याय संबंधी अधिकार अन्य राज्यों जैसे ही हैं।

पंचायतों की देख-रेख के लिए एक पृथक विभाग है। यह पंचायतों का निरीक्षण तथा अधीक्षण करता है। अधिकारों का दुरुपयोग करने पर पंचायतों को भंग किया जा सकता है परन्तु उनका ६ मास के अन्दर फिर चुनाव करना पड़ता है। जिला बोर्डों के लिए पंचों और सरपंचों का चुनाव मण्डल बनाया जाता है।

विन्ध्य प्रदेश

इस राज्य में ७१,३१३ ग्राम हैं जिनमें से ४,०३२ ग्रामों में ५०० पंचायतें हैं। राज्य में १९४९ में पंचायत राज संबंधी अध्यादेश जारी किया गया था।

ग्राम पंचायतें

हरेक पटवारी हलके के लिए एक ग्राम पंचायत बनाई जाती है। सकल वयस्क मताधिकार है। मतदान हस्त प्रदर्शन द्वारा होता है। पंचों की संख्या ५ से १५ तक होती है। सरपंच व प्रधान

सब मतदाताओं द्वारा चुने जाते हैं ।

अधिकार व कर्तव्य

इनके कार्य अनिवार्य तथा ऐच्छिक दोनों तरह के हैं । अनिवार्य कार्य ये हैं—

ग्राम रास्तों का निर्माण, उनकी हिफाजत व मरम्मत, डाक्टरी सहायता, सफाई, महामारियों तथा संक्रामक रोगों का निरोध व निवारण, जन्म, मरण तथा विवाहों का पंजीयन, पथ अतिक्रमण निरोध, मरघटों व कबरिस्तानों का प्रबन्ध, प्रारंभिक स्कूलों की स्थापना तथा उनकी देख-रेख, सार्वजनिक जलाशयों का प्रबन्ध, कृषि, उद्योग तथा व्यापार विकास, प्रसूति तथा शिशु कल्याण, खाद इकट्ठा करने के स्थानों का निर्धारण, आदि ।

वृक्षारोपण, पशु वंश सुधार, गन्दे गढ़ों का भरना, पहरेदारी के लिए स्वयंसेवक दलों का संगठन, बीज संग्रह व वितरण में सलाह देना, पीड़ितों की सहायता, खेल-कूद की उन्नति, वाचनालयों की स्थापना, आदि सार्वजनिक हित के कृत्य उनके ऐच्छिक कार्यों में आते हैं ।

आय के साधन

स्वयंसेवक दलों का खर्च भू-राजस्व से दिया जाता है । सरकार की तरफ १९५२ में ३०० रुपया और १९५३ में १२० रुपया हरेक पंचायत को अनुदान के रूप में दिया गया था । पंचायतें लगान, उद्योगों और व्यवसायों पर भी शुल्क लगा लगा सकती हैं । पल्लेदारों पर ५) तथा व्यापारियों पर १०) वार्षिक शुल्क है । सार्वजनिक सम्पत्ति का किराया तथा धूल, गोबर व मिट्टी के

विक्रय द्वारा हुई आय भी पंचायत निधि में जाती है। उपरोक्त कर न देनेवालों पर सम्पत्ति कर भी लगाया जा सकता है। किराये पर गाड़ी चलानेवालों से ३ रुपया वार्षिक फीस ली जाती है। पंचायत ६०० रुपये की वार्षिक आयवाले व्यापारियों पर ३ पैसा तथा ६०० रुपये से १२०० रुपये वार्षिक आयवाले व्यापारियों पर २ पैसा प्रति रुपया कर लगा सकती है।

न्याय पंचायतें

३ से ५ ग्राम पंचायतों को मिलाकर एक न्याय पंचायत बनती है। हर एक ग्राम सभा ५ पंच चुनती है। २० या २५, जितने भी हों, पंच मिलकर अपना सरपंच चुन लेते हैं। ये पंचायतें ५० रुपये तक के दीवानी वादले सकती हैं। इस अधिकार को १०० रुपये तक बढ़ाया जा सकता है। ये अन्य राज्यों की तरह साधारण फौजदारों वाद भी सुन सकती हैं। शान्ति भंग की आशंका होने पर पंचायत जमानत भी माँग सकती है। पंचायतें अपने निर्णय को बदल नहीं सकतीं।

राज्य में कोई पृथक पंचायत विभाग नहीं है। पंचायत, सहकारिता तथा रसद विभाग एक ही डायरेक्टर के अधीन हैं।

सौराष्ट्र

इस राज्य में ४,३५६ ग्राम हैं जिनमें से १,८७१ ग्रामों में १,७८५ पंचायतें हैं। सौराष्ट्र ग्राम पंचायत अधिनियम १९४६ में पास हुआ। सन् १९५० में इसमें एक मामूली-सा संशोधन किया गया था।

ग्राम पंचायत

ग्रामतौर पर एक गाँव के लिए एक पंचायत होती है।

लेकिन जनता एकमत से गाँवों के समूह के लिए भी एक पंचायत बना सकती है। वयस्क मताधिकार के आधार पर हस्त प्रदर्शन द्वारा मतदान होता है।

पंचों की संख्या ५ से १५ तक रखी गई है। अनुसूचित जातियों और महिलाओं के लिए स्थान सुरक्षित हैं। सरपंच का चुनाव गाँव के समस्त मतदाता करते हैं।

इस राज्य में 'क', 'ख', 'ग', तीन प्रकार की पंचायतें हैं। पहले सभी पंचायतें 'ग' श्रेणी की ही होती हैं और उनको साधारण नगरपालिका-अधिकार ही दिये जाते हैं। जब ऐसी पंचायत राजस्व एकत्रित करने का भार उठाने लगती है तो उसे 'ख' श्रेणी में ले लिया जाता है। जब वह यहाँ अच्छा काम करने लग जाती है तो उसे 'क' वर्ग में ले लिया जाता है। 'क' श्रेणी में आने पर पंचायत को अधिगियम के अधीन सब अधिकार प्राप्त होजाते हैं। सौराष्ट्र में विलीन होनेवाले भावनगर राज्य में संविहित बोर्ड हर जिले में होते थे। ये अब भी पूर्ववत् काम कर रहे हैं।

कर्त्तव्य व अधिकार

पंचायतें सामूहिक, धार्मिक और सामाजिक एकता बढ़ाने के लिए उत्तरदायी हैं। शेष राज्यों की भांति सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा तथा संस्कृति का विकास, नैतिक जीवन की रक्षा, खाद्य भण्डार सुधार, प्राथमिक शिक्षा, जन्म-मरण का पंजीयन, ग्राम पथों, नालियों, गलियों आदि की देख-भाल, स्वयंसेवक दल का संगठन आदि इनके अनिवार्य कार्य हैं। आकस्मिक संकट में इनको राजस्व में छूट देने का भी अधिकार है। तकावी भी इन्हीं के द्वारा दी जाती है।

आय के साधन

आय के प्रमुख साधन हैं—कर, फीस, और जुर्माने । भू-राजस्व की प्राप्ति से आंशिक अनुदान भी दिया जाता है । अनुदान की दर 'ग' वर्ग के १७ $\frac{१}{२}$ %, 'ख' वर्ग के लिए २५% और 'क' वर्ग के लिए ३३ $\frac{१}{३}$ % होती है । इसके अतिरिक्त पंचायतें गाड़ी कर, मकान कर, आमोद-प्रमोद कर, होटल परमिट फीस, चुंगी, सफाई कर, आदि कर लगा सकती हैं । गोबर, कूड़ा-करकट, खाद आदि बेच कर भी आय प्राप्त कर की जा सकती है । पंचायतें दान और उपहार भी स्वीकार कर सकती हैं ।

न्याय पंचायतें

हरेक ग्राम पंचायत में न्याय पंचायत भी होती है । ग्राम का सरपंच न्याय पंचायत का अध्यक्ष होता है । इनके दीवानी तथा फौजदारी अधिकार अन्य राज्यों की भांति ही हैं । ये गुजारे के लिए दरखास्तें ले सकती हैं । ४० रुपये तक जुर्माना कर सकती हैं । इनके निर्णय के विरुद्ध जिलाधीश के पास अपील हो सकती है ।

जिलाधीश पंचायत मण्डल का प्रधान होता है । एक केन्द्रीय मण्डल है जिसे "सौराष्ट्र ग्राम पंचायत मध्यस्थ मण्डल" कहते हैं । इसके २१ सदस्य हैं । स्वशासन मंत्री इसका प्रधान होता है ।

हिमाचल प्रदेश

इस राज्य में १४,१२५ ग्राम हैं जिनके लिए ४६६ पंचायतें स्थापित की जा चुकी हैं । इनमें से ४२६ पंचायतों के चुनाव हो चुके हैं ।

यहाँ पहला अधिनियम १९५२ में बना था । १९५३ व

१९५४ में इसमें सामान्य संशोधन किये गये । २००० की जन-संख्या के लिए एक ग्राम सभा बनाई जाती है । जनसंख्या कम-ज्यादा हो सकती है । एक पटवार हलके के लिए एक ग्राम सभा बनाई जाती है । वयस्क मताधिकार के अधीन हस्त प्रदर्शन द्वारा चुनाव होता है । ग्राम पंचायत के सदस्यों की संख्या ७ से २५ तक होती है । हर तहसील के लिए एक तहसील पंचायत व जिले के लिए जिला पंचायत होती है । चुनाव के लिए क्षेत्र बनाये जाते हैं । अनुसूचित जातियों तथा स्त्रियों के लिए स्थान सुरक्षित हैं ।

कर्त्तव्य व अधिकार

कर्त्तव्य व अधिकार उत्तर प्रदेश भांति हैं । पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ग्राम हित कार्यों को संभालना तथा उन्हें चालू रखना इनका एक और मुख्य ऐच्छिक कृत्य है ।

न्याय पंचायतें

३ से ५ ग्राम सभाओं के लिए एक न्याय पंचायत बनाई जाती है । हर ग्राम सभा न्याय पंचायत के लिए १० पंच चुनती है । इनमें से ५ पंचों की नियुक्ति सरकार नाम निर्देशन द्वारा करती है । न्याय पंचायतों में गुटबन्दी रोकने के लिए ही ऐसा प्रवधान रखा गया है । पंच इकट्ठे मिलकर सरपंच चुनते हैं । हर वाद को सुनने के लिए ५ पंचों की पीठिका बनाई जाती है । पीठिका सरपंच नियुक्त करता है । पीठिका निर्णय की अपील पूरे इज-लास में होती है जिसकी कोरम संख्या ९ होती है ।

न्याय पंचायतें १०० रुपये तक के मूल्य के साधारण दीवानी वाद सुन सकती है । दीवानी अधिकार अन्य राज्यों की

तरह हैं। भारतीय दण्ड संहिता की धारा ४८८ के अधीन गुजारे की दरखास्तें भी सुनी जा सकती हैं। ये १०० रुपये तक जुर्माना कर सकती हैं पर कारावास का दण्ड नहीं दे सकतीं। योग्य पंचायतों के दीवानी अधिकार ५०० रुपये तक बढ़ाये जा सकते हैं।

तहसील पंचायत

तहसील पंचायत में तहसील की हर पंचायत का एक-एक प्रतिनिधि होता है। इसका सभापति तहसीलदार होता है। सरकार २५% तहसील अधिकारी मनोनीत कर सकती है। भू-राजस्व पर उपकर, जो राजस्व का २०% होता है, इनके पास जाता है। अपना खर्च निकालकर यह शेष ग्राम पंचायतों को बाँट देती है। ग्राम पंचायतों के सामूहिक कार्य, उनकी देख-रेख तथा इनमें समानता पैदा करना इसके मुख्य कार्य हैं। यह पंचायत कर नहीं लगा सकती।

जिला पंचायत

इसमें हर तहसील पंचायत का एक-एक प्रतिनिधि होता है। इसका प्रधान जिलाधीश होता है। इसमें ४०% तक जिला अधिकारी सरकार द्वारा मनोनीत किये जा सकते हैं। यह मेलों, व्यवसायों तथा बारबरदारी की गाड़ियों व पशुओं पर कर लगा सकती है।

ग्राम पंचायतों की आय के साधन

पंचायतों को राज्य ने प्रारम्भ के दो वर्षों में १२० रुपया पुस्तकालयों के लिए और १६० रुपया सामान आदि के लिए तथा अन्य कार्यों के लिए अनुदान के रूप में दिया था। विकास योजना के अन्तर्गत पंचायत घरों, क्षेत्रों व उपकरणों के लिए आंशिक अनुदान

देने का भी प्रावधान है। राज्य की अनुमति से मकान कर, विवाह तथा जन्म-पंजीयन शुल्क, लगान व पैदावार पर तथा सम्पत्ति हस्तान्तरण पर भी कर लगाये जा सकते हैं। फीस, जुर्माने आदि से भी आय होती है।

पंचायतों की देख-रेख के लिए सहकारी तथा पंचायत विभागों के मिले-जुले कर्मचारी हैं।

हैदराबाद

इस राज्य में २१,४६७ ग्राम हैं। अबतक १,०२० ग्रामों में पंचायतें बन चुकी हैं। पहला विधान १९४४ में बना था। दूसरा १९५१ में, जो १९५२ में संशोधित भी हुआ। एक गाँव के लिए एक पंचायत बनाई जाती है जिसकी जनसंख्या ५०० से १००० तक होती है। जहाँ ग्राम छोटे हों वहाँ उनके समूह लिये जाते हैं। सदस्य संख्या ६ से १२ तक होती है। २ अथवा ३ सदस्य जिलाधीश द्वारा नामजद किये जाते हैं और शेष चुने जाते हैं। अनुसूचित जातियों के लिए कम-से-कम एक स्थान सुरक्षित होता है।

कर्त्तव्य और अधिकार

इनके कर्त्तव्य और अधिकार अन्य प्रदेशों जैसे ही हैं। ऐच्छिक कृत्यों में नौकरों के लिए घरों का निर्माण, मिश्रित खाद बनाना, खाद के लिए गढ़े खोदना, घातक व्यापारों व जन अहितकारी कार्यों को रोकना व कल्याणकारी कार्य आदि हैं।

आय के साधन

पंचायतें कर लगा सकती हैं। अनुदान और शुल्क भी प्राप्त कर सकती हैं। मकान की लागत पर चार आने से लेकर ५ रुपये

तक तथा व्यवसायों पर १० रुपये तक वार्षिक कर लगा सकती हैं। इनको भू-राजस्व का १५% मिलता है। जिला बोर्ड भी अनुदान देता है। कोई भी कर उस समय तक नहीं लगाया जा सकता जबतक कि कर लगाने के प्रस्ताव को ३ पंचों का समर्थन प्राप्त न हो जाये।

न्याय पंचायतें

न्याय पंचायत के लिए जिलाधीश ग्राम पंचायतों के सदस्यों में से ३ से ६ पंच मनोनीत करता है। सरपंच का निर्वाचन पंच करते हैं। इनको अन्य राज्यों की भांति साधारण दीवानो तथा फौजदारो अधिकार हैं। पंचायतें २५ रुपये तक जुर्माना भी कर सकती हैं। पंचायत के निर्णय के विरुद्ध जिला अदालत में अपील की जा सकती है। इनकी आज्ञा अन्तिम होती है।

राज्य में कोई अलग पंचायत विभाग नहीं है। जिलाधीश अधीक्षण करता है। निरीक्षण कार्य के लिए विशेष कर्मचारी भी हैं। परन्तु वे कम हैं। एक इन्स्पेक्टर के अधीन ७ पंचायतें होती हैं।

त्रावणकोर-कोचीन

कोचीन राज्य में १९१५ से न्याय-पंचायतें चली आ रही हैं। उन्हें “पंचायत कोर्ट” कहा जाता था और वे महाराजा द्वारा स्थापित की गई थीं। उस समय कोचीन में विधान सभा नहीं थी। १९४१ में सरकार ने अदालतों के रूप में पंचायतों के कार्य पर रिपोर्ट पेश करने के लिए एक समिति नियुक्त की। समिति ने रिपोर्ट दी कि मौजूदा पंचायतों को सुधारने के लिए प्रत्येक गाँव के इलाके में स्थानीय प्रशासन के लिए “पंचायतें” और गाँववालों के आपसी

भगड़ों के फैसले करने के “ग्राम-न्यायालय”, दो प्रकार की पंचायतें, स्थापित की जायें। इस पर कोचीन की विधान सभा ने “ग्राम न्यायालय अधिनियम” नामक एक विधान १९४३ में पास किया। कोचीन अधिनियम को समस्त त्रावणकोर-कोचीन राज्य पर लागू करने के लिए १९५० में एक अन्य अधिनियम पास किया गया।

ग्राम पंचायतों का विधान

१९१५ की पद्धति के अन्तर्गत बनाई गई पंचायतें केवल नाम निर्देशित थीं। बाद में एक ऐसा नियम बनाया गया जिसके अनुसार एक या दो सदस्यों के अतिरिक्त शेष सब सदस्य चुने जाने लगे। पिछड़ी हुई जातियों के सदस्यों का नाम निर्देशन किया जाता था। महाराजा द्वारा १९४१ में नियुक्ति की गई समिति ने सिफारिश की कि ग्राम-न्यायालयों के सदस्य सरकार द्वारा नाम-निर्देशित होने चाहियें न कि निर्वाचित किये जाने चाहियें।

निर्वाचित सदस्यों की पदावधि तीन वर्ष है। निर्वाचन के लिए पंचायत का क्षेत्र तीन भागों में विभक्त है।

ग्राम प्रबन्ध के अधिकार

पंचायतों के अधीन लोक-निर्माण विभाग के अधीन सड़कों के अतिरिक्त अन्य सब सड़कें और इन सड़कों पर पुल-पुलियाओं सड़क-बाँधों और पटरियों का निर्माण, उनकी मरम्मत व रक्षा; पटरियों के किनारे की भूमि, गली-कूचों और नहरों जैसे सर्वोपयोगी संचार साधनों तथा चरागाहों व अन्य सामूदायिक जमीनों की सुरक्षा; सिंचाई के छोटे-मोटे काम; कुएं खोदना और उनकी मरम्मत; पीने, नहाने और धोने के लिए पानी के लिए तालाब और हौज बनवाना व उनकी मरम्मत और हिफाजत करना; नहाने

के लिए घाट बनाना; सब सड़कों और सार्वजनिक स्थानों में रोशनी का प्रबन्ध; नालियाँ बनाना व नालियों के पानी को निकालना; सड़कों की सफाई; कूड़े-करकट के ढेर और जंगली भाड़ियों का हटाना; बेकारों कुओं, गन्दे पोखरों, खाइयों व अन्य गढ़ों को भरना तथा पंचायती इलाके की सफाई-सुथराई में अन्य सुधार करना; सार्वजनिक पाखाने बनवाना और सार्वजनिक व निजी दोनों प्रकार के पाखानों की सफाई का प्रबन्ध; कबरिस्तान और मरघट खोलना और उन्हें कायम रखना और महामारी के समय टीके लगाना व अन्य निवारणात्मक तथा चिकित्सात्मक कार्य करना है ।

पंचायतों के ऐच्छिक कार्यों में कुंज और सड़कों के किनारे पेड़ लगाना और उन्हें सुरक्षित रखना, सार्वजनिक बाजार बनाना और उन्हें कायम रखना, मेले और त्यौहारों पर नियन्त्रण, आपत्तिजनक और घातक व्यापारों पर नियन्त्रण, मवेशियों के लिए छप्पर डलवाना, कसाईखाने खोलना और उन्हें बनाये रखना, जन्म और मृत्यु का पंजीयन, साँड पालकर कृषि तथा मवेशियों में सुधार करना और मवेशियों को मौत से बचाना, सहकारी कार्रवाईयों का ग्रामोद्योग की दिशा में विकास, प्राथमिक शिक्षा, गरीबों और बीमारों की मदद, पुस्तकालय और पाठ-गृह खोलना व उन्हें कायम रखना, सिंचाई के छोटे-मोटे साधनों का सुधार और सुरक्षा, अपने क्षेत्राधिकार के आरामगाहों व अन्य संस्थाओं और सम्पत्ति पर नियन्त्रण रखना, सामूदायिक रेडियो-श्रवण का प्रबन्ध, नमूने के खेतों, बीज-भण्डारों और खेती के औजारों व खाद-भण्डारों का कायम करना, डाक्टरी मदद का प्रबन्ध, प्रसूति सेवा

और पंचायती इलाकों में रहनेवालों की सुरक्षा तथा सुविधा व उनके स्वास्थ्य सम्बन्धी सार्वजनिक उपयोगिता के अन्य कार्य करना है ।

आय के साधन

पंचायतों को जमीनों और मकानों पर उप-कर लगाकर अपने लिए स्वयं धन इकट्ठा करने का अधिकार दिया गया है । वे पंचायत-कर नामक एक विशेष कर भी लगा सकती हैं । उपर्युक्त करों से प्राप्त समस्त धन और जुर्मानों से मिली हुई रकम व पंचायत के अधीन सभी सम्पत्ति की बिक्री से प्राप्त आय पंचायत-निधि में जमा होती है । इसके अलावा मकान के सलाना किराये की असल रकम का ४ प्रतिशत भाग मकान-कर के रूप में लिया जा सकता है ।

ग्राम पंचायत

१९५० के ग्राम-न्यायालय अधिनियम के अन्तर्गत हरेक गाँव के इलाके के लिए सरकार एक ग्राम-न्यायालय नियुक्त करती है जिसमें पाँच सदस्य होते हैं, जिनमें से एक अध्यक्ष और एक ज्येष्ठ न्यायाधीश होता है । वे ग्रामवासियों से ही चुने जाते हैं और अवैतनिक रूप से काम करते हैं । उनके द्वारा मान्य मुकदमे संहितानुसार देय धन अथवा निजी सम्पत्ति के लिए अथवा ऐसी सम्पत्ति की अदायगी के दावे होते हैं जिसमें कर्ज या दावे की रकम आंशिक रूप में या अन्य किसी रूप में १०० रुपये से अधिक नहीं होती ।

दोनों पक्षों की लिखित अनुमति प्राप्त होने पर ग्राम-न्यायालय इस प्रकार के मुकदमों की सुनवाई कर सकता है, पर दावे की रकम २०० रुपये से अधिक नहीं होनी चाहिये ।

न्यायालय शुल्क दीवानी अदालतों में दिये जानेवाले शुल्क से कम होता है ।

मुकदमे की जाँच के लिए तीन न्यायाधीशों का इजलास होता है । पंचायत न्यायालय में किसी वकील को पैरवी करने की इजाजत नहीं है । कर्जदार की गिरफ्तारी या नजरबन्दी करके या कर्जदार की चल सम्पत्ति को बेच कर ग्राम-न्यायालय अपनी डिगरी को कार्यान्वित कर सकता है । ग्राम-न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील नहीं हो सकती है किन्तु पीड़ित पक्ष ग्राम-न्यायालय के पंजीयन अधिकारी के यहाँ अपना मामला पेश कर सकता है । पंजीयन अधिकारी को ग्राम-न्यायालयों के निर्णयों का पुनरीक्षण करने का अधिकार प्राप्त है ।

ग्राम-न्यायालयों ने छोटे-मोटे मुकदमों का फैसला आसान कर दिया है । ग्राम-न्यायालयों में सम्बन्धित पेशेवर एजेण्टों की एक जमात-सी पैदा हो गई है । पैसे की कमी के कारण आजकल पंचायतें सुस्त पड़ गई हैं । साथ ही नौकरशाही तरीकों की भी कमी नहीं है जिनके कारण पंचायती अदालतों के काम में रुकावट पड़ती है ।

कच्छ

- | | |
|---|-------|
| १. ग्रामों की संख्या | = ६६४ |
| २. ग्राम पंचायतों की संख्या | = ४१ |
| ३. उन ग्रामों की संख्या जिनमें पंचायतों की स्थापना हो चुकी है | = ४६ |
| ४. अभी कोई न्याय पंचायत स्थापित नहीं हुई है । | |
| ५. कच्छ में बम्बई का स्थानीय स्वशासन अधिनियम १९२३, | |

परिचालित किया गया था । इसके अधीन इस राज्य में एक जिला बोर्ड है ।

६. १९५० में संशोधित बम्बई ग्राम पंचायत अधिनियम १९३३, इस राज्य में प्रचलित है ।

कुर्ग

१. इस राज्य में कुल ग्रामों की संख्या २९७ है और अभी तक केवल तीन ग्रामों के लिए एक पंचायत स्थापित की गई है ।
२. वर्तमान पंचायतों को केवल नगरपालिका संबंधी कार्य सौंपे गये हैं । उन्हें न्याय सम्बन्धी कोई अधिकार नहीं दिये गये हैं । अन्य कोई संस्था नहीं है । कुर्ग जिला बोर्ड भी १ अप्रैल १९५५ से समाप्त कर दिया गया है । इसका कार्य सरकार को सौंप दिया गया है ।
३. शिमला में आयोजित स्थानीय स्वशासन मंत्रियों के दूसरे सम्मेलन के निर्णय के अनुसार कुर्ग विधान सभा में पेश करने के लिए तैयार किया गया एक विधेयक केन्द्रीय सरकार की अनुमति के लिए भेजा गया है जिसके अनुसार पंचायतों का निर्माण उपरोक्त सभा के निर्णय के अनुसार होगा ।

स्वतंत्रता के बाद पंचायतों द्वारा विकास तथा न्याय, दोनों क्षेत्रों में किया गया कार्य सचमुच उत्साहवर्धक है । इस बीच में पंचायतों के तत्वावधान में हजारों मील लंबी सड़कें बनाई गई हैं । इसी काल में सैकड़ों बाँध भी बनाये गये । मीलों लंबी पानी की छोटी-छोटी नहरें बनीं और लाखों पेड़ लगाये गये । खाद के असंख्यों गढ़े बनाये गये हैं । श्रमदान द्वारा करोड़ों रुपयों का काम

हुआ है। सैकड़ों पंचायत घर बने हैं। कितनी ही ग्राम पंचायतों ने आदर्श ग्रामों की योजनाएँ बनाई हैं। परन्तु सब पंचायतों की यह शिकायत है कि राज्य कर्मचारियों तथा राजकीय विभागों ने पंचायतों के महत्व को समझने तथा जनता की इस संस्था को अपनाने में कोई दिलचस्पी नहीं ली है। यह एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है, क्योंकि जबतक राजकीय विभागों तथा कर्मचारियों का दृष्टीकोण नहीं बदलता तबतक संविधान के अनुच्छेद ४० में दिये गये निर्देश को कार्य रूप में परिणत करना सम्भव नहीं होगा।

राज्यों में पंचायतों द्वारा किये गये कार्य से स्पष्ट हो जाता है कि न्याय पंचायतों का पृथक होना अधिक ठीक है। गाँव से जिले तक शृंखलाबद्ध तथा परोक्ष चुनाव पद्धति से चुनी गई पंचायतों के आधार पर पंचायत राज का निर्माण होना चाहिये। तहसील, ताल्लुका तथा अंचल व जिले के लिए ग्राम पंचायतों पर आधारित पंचायतों का निर्माण होना चाहिये।

आय के साधनों की न्यूनता सब जगह खटक रही है। कर लगाने के पक्ष में पंचायतों का भुकाव नहीं है। केवल श्रम कर वे अवश्य लगाना चाहती हैं। इसके अतिरिक्त वे पंचायतों के साथ कृषि भूमि तथा उद्यान आदि लगा कर स्वयं धन पैदा करना चाहती हैं। परन्तु उनका विशेष भुकाव राजकीय करों से निश्चित भाग प्राप्त करने की ओर है।

जहाँतक पंचायतों के कर्तव्यों तथा अधिकारों का सम्बन्ध है, साधारणतया सब राज्यों में वे एक से ही हैं। उनमें यदि भेद है तो वह बहुत थोड़ा है।

: ६ :

पंचायतों का कार्यक्षेत्र

आरम्भ से ही मनुष्य सुख और आनन्द की खोज में रहा है। अपने जीवन को अधिकाधिक सुखमय तथा आनन्दमय बनाने के लिए उसने भांति-भांति के प्रयोग किये हैं। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में भी अधिक सुख, शान्ति और आनन्द का वातावरण बनाने के लिए मनुष्य ने आदिकाल से प्रयास किये हैं। सामाजिक जीवन के उदय का मूल कारण यही था। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य को स्वेच्छा से कई बन्धन भी स्वीकार करने पड़े। मनुष्य का सारा आचरण इस बात की पुष्टि करता है। एक हद तक मनुष्य को इस प्रकार लगाये गये बंधन अधिक लाभप्रद लगे, लेकिन कालांतर में, जब ये अंकुश बहुत अधिक बढ़ गये, तो वे स्वाभाविकतया उसे अत्यधिक लगने लगे और उसकी अनेकों परेशानियों के कारण हो गये।

हमारे मत में जबतक “व्यक्ति समाज के लिए और समाज व्यक्ति के लिए” का सिद्धान्त पूर्णतः चरितार्थ होता रहा—जबतक व्यक्ति का क्षेत्र परिवार और ग्राम तक सीमित रहा—तबतक मनुष्य को इन परेशानियों का इतना सामना नहीं करना पड़ा। इसका कारण यह है कि तब सामाजिक संगठन इतना विस्तृत तथा जटिल न था कि व्यक्ति व्यक्ति का विचार न कर सके। इस छोटे-से समाज में—जो इने-गिने परिवारों से बने

ग्रामों तक सीमित था—व्यक्ति पूरे ग्राम समाज को अपने सीमित ज्ञान की विचार-परिधि में सुगमतापूर्वक रख सकता था ।

लेकिन जीवन के इस प्रकार सामाजिक हो जाने से उसके नियमन की आवश्यकता पड़ी । सामाजिक इकाई धीरे-धीरे बड़ी होती गई, और कुछ समय के बाद उसमें कई-कई गाँवों के समूह आ गये । फिर राज्यों की उत्पत्ति हुई और समाज के प्रबंध में अधिकाधिक केन्द्रीकरण होता गया । हर देश में सत्ता सम्राट में केन्द्रित होने लगी । देश की सामूहिक सुरक्षा और व्यवस्था बनाये रखने के लिए इस प्रकार के केन्द्रीकरण की आवश्यकता और अधिक बढ़ गई । हमारे देश में भी सम्राटों का उदय हुआ । पर जैसा कि हम पिछले अध्यायों में देख चुके हैं, राज्य और राजा के उदय के बाद भी भारत में ग्राम-स्वशासन चलता रहा ।

पर इस प्रकार स्थापित कोई भी व्यवस्था मनुष्य की सभी समस्याओं का समाधान न कर सकी । मानव इतिहास में समय-समय पर सामने आनेवाली इन सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्थाओं की असफलता का मुख्य कारण यही है कि वे व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्णतः संतुष्टि नहीं कर सकीं ।

सामाजिक संगठन के इसी आधारभूत विरोधाभास को देखते हुए गांधीजी ने ग्राम्य संगठनों और पंचायती व्यवस्था पर जोर दिया था । उनके मत में पंचायत राज ही इन समस्याओं का एकमात्र उत्तर था । लोक सेवक संघ की नियमावली की भूमिका में उन्होंने लिखा था—“देश को अब शहरों और कस्बों

वह आधुनिक ढंग के संसदीय राज के विरोधी थे । उन्होंने अपनी पुस्तक “हिन्द स्वराज” में एक जगह लिखा है—

“इंग्लैण्ड की इस समय जो हालत है उसे देख कर तो सचमुच दया आती है । मैं ईश्वर से मनाता हूँ कि वैसी हालत भारत की कभी न हो । जिसे आप संसदों की जननी कहते हैं, इंग्लैण्ड की वह संसद् तो बाँझ और वेश्या के समान है । ये दोनों शब्द कड़े हैं, पर उस पर पूरी तरह लागू होते हैं ।”

(हिन्द स्वराज, पृष्ठ २४)

इन दोनों उद्धरणों से प्रकट हो जाता है कि महात्माजी की पंचायत राज-पद्धति संसदीय पद्धति से भिन्न है । पंचायत पद्धति सच्चा लोकतंत्र व सच्चा स्वराज प्रदान करनेवाली पद्धति है । परन्तु अभी कोई देश इस पद्धति पर पूर्णतः अमल करने के लिए तैयार नहीं है । भारत का शासन तंत्र आज भी वही है जो अंग्रेजों के समय था । इस अवस्था का चित्र खींचते हुए श्री मंजूर अली सोख्ता ने अपनी पुस्तक “बापू की वसीयत” में लिखा है—

“अंग्रेज गये लेकिन अंग्रेजीयत बाकी है । यूरोप गया, लेकिन यूरोपीय सभ्यता बाकी है । जैसा कि हम कह चुके हैं, बापू पश्चिमी सभ्यता को पश्चिमी राज से ज्यादा जहरीली और खतरनाक समझते थे । पर जब खुद देश की संसदीय सरकार इस सभ्यता को फैलाने का जरिया बन गई हो, तब इससे बचने का उसके सामने कौन-सा जरिया बाकी रह गया है ? ... पुरानी सभ्यता में धर्म के चार चरण माने जाते थे । अंग्रेजी राज ने अधर्म के चार चरण कायम किये, ये चार चरण थे—पुलिस

राज, अदालत राज, पटवारी राज और अधिकारी राज । लोगों को आशा थी कि अंग्रेज यहाँ से जाते समय अपने इन चार चरणों को भी अपने साथ लेते जायेंगे, पर वह इन्हें विरासत में कांग्रेस को दे गये हैं और आज कांग्रेस खुद इन चारों की पोषक बनी हुई है ।”

सर्वोदय समाज की सर्वोदय योजना में भारत की परम्परा-नुकूल तथा मानव के स्वाभावानुरूप पंचायती राज की स्थापना पर जोर दिया गया है । परन्तु जितना ध्यान इस ओर दिया जाना चाहिये था उतना नहीं दिया गया है । हम औपचारिक लोकराज से इतने प्रभावित हो गये हैं कि उससे निकलना भी कठिन-सा प्रतीत होता है । इस पृष्ठभूमि में देश के पुनर्निर्माण की योजनाओं में भी ग्रामों और ग्रामों के स्वावलम्बन की ओर कम ध्यान दिया जाना स्वाभाविक ही है ।

यह हम कई बार कह चुके हैं कि पंचायत राज की इकाई गाँव ही होना चाहिये । पर समस्या यह है कि गाँव किसे कहें ? भारत में पाँच व्यक्तियों की जनसंख्या से लेकर ५००० की जनसंख्या तक के गाँव हैं । ऐसी दशा में जबतक हम ग्राम की जनसंख्या के आधार पर कोई एक इकाई निश्चित न कर लें तबतक इस संगठन का ढाँचा बनाना कठिन ही रहेगा । यदि हम भारत के क्षेत्रफल, जनसंख्या तथा इसके विचित्रकाय ग्रामों पर एक विहंगम दृष्टि डालें तो हम इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि साधारणतया पंचायत की इकाई के लिए एक सहस्र जनसंख्या पर्याप्त होगी । इसके लिए कहीं तो हमें कम जनसंख्यावाले कई ग्रामों के समूह बनाने पड़ेंगे, और कहीं-कहीं पर हमें अधिक जनसंख्या

वाले ग्रामों को कुछ खंडों में बाँटना पड़ेगा। इस प्रकार की पाँच इकाइयों को मिलाकर एक पंचायती क्षेत्र का निर्माण होगा। अभी तक तो पंचायत क्षेत्र के सभी वयस्क मतदान करके एक एक प्रबन्ध समिति चुनते हैं। इस समिति के सदस्यों की संख्या हर राज्य में भिन्न है। चुनाव हस्त प्रदर्शन द्वारा होता है। मतदान की इस पद्धति पर बड़ा मतभेद है। इस से मतदान की स्वतंत्रता में बाधा पड़ने की बड़ी संभावना रहती है। अधिकांश लोग गुप्त मतदान के पक्ष में हैं।

पंचायतों में जहाँ यह आवश्यक है कि रचनात्मक प्रवृत्तियों-वाले लोग पंच बनें, वहाँ यह भी आवश्यक है कि वे क्षेत्र के भिन्न-भिन्न ग्रामों का भली प्रकार प्रतिनिधान कर सकें। अतः यही ठीक होगा कि एक सहस्र जनसंख्या के ग्रामक्षेत्र से पाँच-पाँच पंच चुने जायें और फिर वे अपना प्रधान चुन लें। साधारणतया यह चुनाव सर्व सम्मति से होना चाहिये। इसके अतिरिक्त पंचायती चुनाव दलबंदी के आधार पर नहीं होना चाहिये। मत प्राप्त करने के लिए प्रचार कार्य नहीं किया जाना चाहिये। पंचायत की सदस्यता के लिए रचनात्मक कार्य एक आवश्यक शर्त होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त चुनाव गुप्त मतदान की प्रणाली से ही होना चाहिये।

इस प्रकार संगठित ग्राम पंचायत को अपने क्षेत्र में छोटे पैमाने पर शासन के अधिकार देना ठीक होगा। हो सकता है कि उपरोक्त प्रस्ताव कुछ अजीब-से लगें, क्योंकि औपचारिक लोकतंत्र का हमारे ऊपर बड़ा जबरदस्त और गहरा प्रभाव पड़ा हुआ है। पर यह निश्चित है कि हमें देश के हितों में उसकी आव-

श्यताओं के अनुसार नये तरीके निकालने पड़ेंगे ।

हम अब यह देखेंगे कि पंचायतों के कार्यक्षेत्र में किन-किन बातों को लिया जा सकता है । हमारे मत में इस क्षेत्र में निम्न-लिखित को रखना चाहिये—

१. शिक्षा ।
२. स्वास्थ्य ।
३. सहकारी व्यापार ।
४. वन-प्रबंध ।
५. पथ निर्माण ।
६. खाद्य ।
७. कर-वसूली ।
८. न्याय ।
९. विविध ।

शिक्षा

सामाजिक जीवन में शिक्षा के महत्त्व को किसी प्रकार कम नहीं किया जा सकता । यह बात सब मानते हैं कि शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था हमारी आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है । खासकर देहातों के लिए यह बात और अधिक ठीक है । ग्रामों में शिक्षा की उचित व्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा का प्रबंध वहीं के लोगों के हाथ में हो । इसलिए इस स्तर पर शिक्षा पंचायतों के नियंत्रण में रहनी चाहिये । यह शिक्षा कृषि तथा ग्रामोद्योगों की तरफ रुचि उत्पन्न करनेवाली, आकर्षक, सब के लिए सुलभ और स्वावलम्बन की भावनाएँ पैदा करनेवाली होनी चाहिये ।

यह पहले कहा जा चुका है कि प्रारम्भिक ग्राम की जन-संख्या १००० होनी चाहिये । हर प्रारम्भिक ग्राम में एक प्राथमिक पाठशाला होनी चाहिये । पाठशाला में बालक-बालिकाओं को साथ-साथ शिक्षा दी जानी चाहिये । ऐसी हर पाठशाला में छात्रों की संख्या लगभग १०० होगी । इसके लिए पाठशाला में दो अध्यापक होने चाहियें । अध्यापकों में एक पुरुष और एक स्त्री होनी चाहिये । साधारणतया इन पाठशालाओं के अध्यापकों के तबादले नहीं होने चाहियें । यदि तबादला ठीक भी समझा जाये तो वह पंचायत क्षेत्र के अन्दर ही होना चाहिये । जहाँ-तक संभव हो, अध्यापक पंचायत क्षेत्र के ही होने चाहियें ।

पाठशाला के साथ ही एक कृषिक्षेत्र होना चाहिये । यह लगभग १० एकड़ का होना चाहिये । जहाँ कृषिक्षेत्र न स्थापित किये जा सकें (जैसे नागरिक क्षेत्रों में), वहाँ दूसरे घरेलू उद्यमों की शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये । पाठ्यक्रम स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिये ।

शिक्षा पण्डित भले ही कुछ भी कहें, हमारा तो यही विश्वास है कि प्रारम्भिक स्तर पर रचनात्मक ढंग से अक्षर-ज्ञान, गणित भूगोल, विज्ञान, इतिहास तथा संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान ही पर्याप्त होगा । पाठशाला का कृषिक्षेत्र इस प्रकार केवल कृषी-कार्य को ही प्रोत्साहित नहीं करेगा, अपितु वह छात्रों की रचनात्मक वृत्तियों को भी जाग्रत तथा उन्नत करेगा ।

कृषिक्षेत्र के साथ एक छोटी-सी गौशाला, एक बागीचा तथा एक पौधों की नरसरी भी होनी चाहिये । अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों को मँहगाई-भत्ते की जगह पैदावार का कुछ भाग

दिया जा सकता है और इस प्रकार नकदी में दिये जानेवाले वेतन को और कम रखा जा सकता है। पैदावार को ग्रामीण सहकारी सभा द्वारा मण्डियों में पहुँचाया जा सकता है। ऐसे कृषिक्षेत्रों की आय का संक्षिप्त अनुमान इस प्रकार किया जा सकता है—

संख्या	मद	क्षेत्रफल	आय
१.	अनाज	५ एकड़	३२०० रुपया
२.	आलू अथवा अन्य कमाईवाली पैदावार	२½ एकड़	२६०० रुपया
३.	बागीचा	२ एकड़	१००० रुपया
४.	सब्जी	½ एकड़	२०० रुपया
			७००० रुपया

पंचायत क्षेत्र के पाँचों विद्यालयों से इस प्रकार होनेवाली आय ३५,००० रुपये के लगभग होगी। ऊपर की तालिका में घास तथा भूसे आदि की गिनती नहीं की गई है, क्योंकि यह बैलों तथा गौशाला के पशुओं की खुराक के रूप में इस्तेमाल कर लिया जायेगा।

इन पाठशालाओं की विशेषता यह होगी कि छात्रों को पुस्तकों तथा स्टेशनरी आदि भी पंचायतें ही देंगी। पंचायत के प्रधान कार्यालय के स्थान पर दो माध्यमिक (सेकंडरी) विद्यालय होंगे। एक बालकों के लिए, दूसरा बालिकाओं के लिए। बालकों के विद्यालय के साथ कृषिक्षेत्र होगा और बालिकाओं के विद्यालय में साथ कातने, बुनने आदि के केन्द्र। माध्यमिक विद्यालयों में प्रारम्भिक

श्रेणियाँ नहीं होंगी। इससे माध्यमिक विद्यालयों का प्रारम्भिक पाठशालाओं के साथ सजीव सम्बन्ध बना रहेगा। पंचायत क्षेत्र में दो माध्यमिक विद्यालय और पाँच प्राथमिक पाठशालाएँ होंगी।

यदि निम्न तालिका के आधार पर एक प्राथमिक पाठशाला का वार्षिक व्यय ४३८० रुपया मान लिया जाय तो पाँच पाठशालाओं का व्यय लगभग २२,००० रुपया होगा।

संख्या	मद	व्यय
१.	२ अध्यापक (वेतन ५० रु०—२५ रु०)	१८०० रुपया
२.	२ चपरासी (वेतन ४५ रुपया)	१०८० रुपया
३.	पुस्तकें तथा स्टेशनरी	१००० रुपया
४.	बैल, औजार तथा घास आदि	५०० रुपया
		४३८० रुपया

यह अनुमान वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार है। अनाज के सस्ते होने पर इसमें और कमी आ सकती है। स्पष्ट है कि प्रारम्भिक शिक्षा पर जो व्यय होगा वह इन कृषिक्षेत्रों की आय में से ही निकल सकेगा। यह केवल शिक्षा की बात है। पंचायत की आय-व्यय पर विस्तार से आगे विचार किया जायगा। इन पाठशालाओं के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकें तैयार की जायेंगी।

प्रीढ़ शिक्षा का कार्य भी यही पाठशालाएँ करेंगी। पर यह कार्य इतना जटिल तथा बड़ा है कि निश्चित योजना के बिना अग्रसर नहीं हो सकता। पंचायती शिक्षा योजना के शुरू होने

के बाद ही इस कार्य की शुरुआत की जा सकती है ।

प्रौढ़ शिक्षा के लिए उपयुक्त पुस्तकों को भी आवश्यकता पड़ेगी । ये पुस्तकें ऐसी होनी चाहियें कि एक ही पुस्तक से अक्षर ज्ञान के साथ-साथ गणित, भूगोल, इतिहास, विज्ञान, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र, कृषि, समाजशास्त्र, सदाचार आदि सभी विषयों की प्रारम्भिक शिक्षा दी जा सके । ऐसी पुस्तकें रोचक तो होनी ही चाहियें, साथ ही वे उपयोगी ज्ञान भी प्रदान करनेवाली होनी चाहियें ।

हम सहाईशिक्षा को भारतीय परम्परा के अनुकूल नहीं मानते । प्रारम्भिक शिक्षा के बाद बालक-बालिकाओं के अलग-अलग शिक्षण का प्रबंध होना चाहिये । इन विद्यालयों में छात्रों के भविष्य का ध्यान रखते हुए उसी के अनुसार उपयुक्त शिक्षा दी जानी चाहिये । इसके अतिरिक्त ये विद्यालय कई ग्रामोपयोगी कार्य भी करेंगे । हर बाल-विद्यालय में एक छोटी-सी वर्कशाप होगी जहाँ विद्यार्थियों को तो प्रशिक्षण मिलेगा ही, साथ ही उसमें ग्रामवासियों के लिए उपयोगी औजार आदि भी तैयार किये जा सकेंगे । इसी प्रकार विद्यालयों के खेत भी एक प्रकार के प्रायोगिक खेत होंगे जहाँ उन्नत बीजों और फसलों से सम्बन्धित प्रयोग जायेंगे ।

स्वास्थ्य

देहातों में स्वास्थ्य की समस्या बड़ी कठिन और उलझी हुई है । इस समस्या के कई पहलू हैं । सबसे पहली बात यह है कि देहातों में चिकित्सालय नहीं के बराबर हैं । दूसरी बात चिकित्सा-पद्धति की है—देश में कई चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित

हैं, जैसे एलोपैथी, होमियोपैथी, आयुर्वेदिक, यूनानी, आदि । तीसरी बड़ी बात देहातों में जन-स्वास्थ्य की है ।

जहाँतक चिकित्सालयों की कमी का प्रश्न है, उसके बारे में हमारा स्पष्ट मत यह है कि गाँवों में चिकित्सालयों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिये । हर गाँव में कम-से-कम एक छोटा औषधालय अवश्य होना चाहिये ।

चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियों का प्रश्न अधिक टेढ़ा है । इसमें कोशिश इस बात की करनी चाहिये कि विभिन्न पद्धतियों में सामंजस्य स्थापित किया जाये । प्रत्येक चिकित्सक को सभी पद्धतियों के सामान्य ज्ञान के अतिरिक्त एक पद्धति का विशेष ज्ञान अवश्य होना चाहिये । ग्राम चिकित्सालय का अध्यक्ष एक वैद्य होना चाहिये जिसे एलोपैथी का प्रारम्भिक ज्ञान अवश्य हो । पंचायत केन्द्र में एक एलोपैथिक औषधालय होना चाहिये । केन्द्र औषधालयों के चिकित्सकों को आयुर्वेदिक तथा यूनानी पद्धतियों का सामान्य ज्ञान भी अवश्य होना चाहिये ।

देहातों में जन-स्वास्थ्य की रक्षा का भी कोई विशेष प्रबंध नहीं है । यह कार्य ग्राम-औषधालयों के सुपुर्द होना चाहिये । औषधालयों के अध्यक्ष गाँव में जन-स्वास्थ्योपयोगी जानकारी का प्रसार करेंगे । इसके अतिरिक्त वे पंचायतों के पदाधिकारियों को इस सम्बन्ध में उपयोगी सलाह-सम्मतियाँ भी देंगे ।

पंचायत स्तर पर यह सारी व्यवस्था पंचायत के अधीन होगी ।

पंचायती स्वास्थ्यशाला के व्यय का अनुमान इस प्रकार है—

संख्या	मद	धन्य
१.	एक बैद्य (८० रु० मासिक)	६६० रुपया
२.	एक मिडवाइफ (७० रु० मासिक)	८४० रुपया
३.	एक कम्पाउण्डर (६० रु० मासिक)	७२० रुपया
४.	एक चपरासी (४० रु० मासिक)	४८० रुपया
५.	दवाइयाँ आदि मासिक	१००० रुपया
		४००० रुपया

सहकारी व्यापार

हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में व्यापारो का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। व्यापारी पर एक बड़ा सामाजिक उत्तरदायित्व है—वह समाज की बड़ी आवश्यक सेवा करता है। लेकिन यह बात सिद्धान्त के रूप में तो ठीक हो सकती है, पर वास्तव में ऐसी नहीं है। आजकल व्यापारी का एकमात्र उद्देश्य अधिक-से-अधिक मुनाफा प्राप्त करना होता है। मुनाफा लेने की प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई है कि वह इसके लिए सामान्यतः निन्दनीय समझे जाने-वाले कार्यों में बिना किसी भ्रिभ्रक के लीन हो जाता है। सामान्य व्यापारी आज मुनाफाखोरी, घूसखोरी तथा चोरबाजारी आदि का प्रतीक माना जाने लगा है। गाँवों में व्यापारी एक और बड़ा भी करता है। वह गाँव का महाजन होता है। अपनी आर्थिक स्थिति का लाभ उठाकर वह निर्धन ग्रामीणों का निःशंक शोषण करता है। देहातियों को जब धन की आवश्यकता पड़ती है तो उनकी आवश्यकता और अज्ञान का लाभ उठाकर व्यापारो उन्हें मनचाही दरों पर कर्ज देता है। ब्याज इतनी तेजी से बढ़ता है कि

अपनी सीमित आय के कारण सामान्य देहाती के लिए छोटे-से-छोटे कर्ज को चुका देना भी असम्भव-सा हो जाता है।

इसका एकमात्र उपाय सहकारी आंदोलन है। गाँवों में बहुद्देशीय सहकारी समितियाँ स्थापित की जानी चाहियें। पर हमारी योजना के अन्तर्गत बनी इस प्रकार की समितियों का उद्देश्य व्यापारी को समाप्त करना नहीं होगा। इनका उद्देश्य होगा व्यापारी, उत्पादक और उपभोक्ता के पारस्परिक सम्बन्धों को सुधारना। इसके लिए हर पंचायत क्षेत्र में एक बहुद्देशीय सहकारी समिति की स्थापना होनी चाहिये। क्षेत्र के सभी उत्पादक और व्यापारिक परिवार इस समिति के सदस्य होंगे। क्षेत्र का समस्त व्यापार, उपज का मण्डियों में ले जाना, दैनिक आवश्यकता के पदार्थों की क्षेत्र में उपलब्धि, धन का आदान-प्रदान—जमा करना और कम ब्याज पर कर्ज देना, ये सभी कार्य इन्हीं समितियों के द्वारा किये जाने चाहियें। इस व्यवस्था के अन्तर्गत व्यापारी सभा के अधीन उसके एजेंट के रूप में कार्य करेगा। हर गाँव में इस प्रकार का कम-से-कम एक व्यापारी होगा। सभा उसे विक्रय के लिए माल देगी। वह निश्चित तथा निर्धारित मूल्य पर माल की बिक्री करेगा। सहकारी समिति इस प्रकार के व्यापारियों की संख्या बढ़ा सकती है। व्यापारी को एक निश्चित कमीशन दिया जायेगा। इस प्रकार भारत में व्यापार की एक नयी पद्धति का उदय होगा जो सारे संसार के लिए आदर्श होगी।

एक पंचायत क्षेत्र में ऐसी एक ही बहुद्देशीय सहकारी समिति होनी चाहिये। समिति पर पंचायत का सामान्य नियंत्रण

तथा निरीक्षण रहना चाहिये । लेकिन समिति की कार्य-कुशलता और सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसके कर्मचारी ईमानदार, कुशल तथा योग्य हों । सहकारी समिति के मंत्री का वेतन २०० रुपया होना चाहिये । यदि यही मंत्री पंचायत का कार्य भी संभाल ले, तो उसका आधा वेतन पंचायत देगी ।

इस प्रकार की बहुद्देश्यीय सहकारी समिति के आय-व्यय का एक सामान्य बजट बनाना संभव नहीं है क्योंकि भिन्न-भिन्न स्थानों तथा भिन्न-भिन्न दशाओं में समितियों की आय भी भिन्न-भिन्न होगी । परन्तु इस बजट का एक साधारण चित्र अवश्य दिया जा सकता है जिससे ऐसी सहकारी संस्था की आर्थिक संभावनाओं की कल्पना की जा सकती है ।

यदि सहकारी संस्था का प्रत्येक अंश १०० रुपये का हो और उसका २० प्रतिशत प्रार्थना पत्र के साथ लिया जाये, और यदि १००० अंश बिक जायें तो सहकारी संस्था का मूलधन २५,००० रुपया होगा । इस धन से संस्था के सब काम चल सकते हैं । सम्भावित आय यह हो सकती है—

सहकारी समिति की सम्भावित आय

१. आयात, निर्यात तथा थोक व्यापार से

६। प्रतिशत मुनाफा

(एक लाख रुपये के संभावित कारोबार पर) ... ६०५० रुपया

२. आमदनी देनेवाली पैदावार

तथा उद्योग-धन्धों की उपज के व्यापार

से आय (संभावित)

... ६००० रुपया

३. ऋण पर व्याज

... ६०० रुपया

४. संस्था की अपनी सहकारी औद्योगिक संस्थाओं

तथा सहकारी खेतों व बागीचों की उपज । ... १००० रुपया

१३,८५० रुपया

समिति का सम्भावित व्यय

१. मंत्री	(२०० रुपया मासिक वेतन)	२४०० रुपया
२. क्लर्क	(८० रुपया मासिक वेतन)	९६० रुपया
३. २ चपरासी	(४० रुपया प्रति चपरासी मासिक वेतन)	९६० रुपया
४. स्टोरकीपर	(६० रुपया मासिक वेतन)	७०० रुपया
५. विक्रेता	(६० रुपया मासिक वेतन)	७२० रुपया
६. स्टेशनरी व फर्नीचर आदि		२००० रुपया
७. भागीदारों का लाभ १० प्रतिशत		२५०० रुपया
८. रिजर्व फंड (महत्तम मात्रा २०००० रुपया)		१००० रुपया
९. सहायक कोष		१००० रुपया

१२,२६० रुपया

उपरोक्त बजट से प्रकट है कि सब लाभों तथा कोषों आदि का प्रावधान करने के बाद ९९० रुपये की बचत रह जाती है । यह बचत ग्राम सुधार के कार्य के लिए पंचायत को दी जा सकती है । यदि एक तहसील में इस प्रकार की लगभग १० सभाएँ हों और जिले में लगभग ६० सभाएँ हों, तो जिले के केन्द्रीय सहकारी बैंक के पास इन सभाओं की अमानतों के रूप में प्रतिवर्ष ६०,००० रुपया आयेगा और सुरक्षित कोष पूरा हो जाने पर कुल रुपया १२ लाख होगा ।

ये अन्दाज कम ही रखे गये हैं ताकि यह अन्दाजा औस-

तन ठोक रहे। यह अन्दाज काल्पनिक नहीं है। लेखक ने ऐसी सभाएँ देखी हैं जो १०० प्रतिशत मुनाफा बाँटकर और लगभग १००० रुपया वार्षिक दान देने के बाद भी ५ वर्ष में ५०,००० रुपया जमा कर सकी हैं। लेखक का विश्वास है कि ऐसी सहकारी सभाओं की औसत आय इससे दुगुनी होगी।

वन-प्रबन्ध

वनों के महत्त्व और उपयोगिता से हमारे देशवासी प्राचीन काल से परिचित रहे हैं। व्यर्थ पेड़ काटना अथवा उसे पहुँचाना आज भी बुरा समझा जाता है। पेड़ लगाना हमारे यहाँ सदा से एक पवित्र कार्य माना गया है। हमारे यहाँ प्राचीन काल से सार्वजनिक पथों के दोनों ओर छायादार पेड़ लगाने की प्रथा चली आ रही है।

पर क्रमिक तथा वैज्ञानिक रूप से भारत में वन उद्योग शुरू करने का श्रेय अंग्रेजों को ही जाता है। अंग्रेजी शासन-काल में देश में एक नियमित वन-विभाग का निर्माण किया गया। वनों को पाँच श्रेणियों में विभक्त किया गया—

१. रक्षित (रिजर्व्ड)।
२. सीमांकित (डिमार्केटेड)।
३. सुरक्षित (प्रोटेक्टेड)।
४. खुले (अनप्रोटेक्टेड)।
५. ग्राम्य या देहाती वन (विलेज-फारेस्ट्स)।

अंतिम वर्गीकरण (ग्राम्य अथवा देहाती वन) अपेक्षाकृत नया है। इस प्रकार का वर्गीकरण देश में वनों की रक्षा, उनके विकास और विस्तार में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है।

लेकिन इस प्रकार के वन-प्रबंध का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें मनुष्य की सामान्य आवश्यकताओं की अवहेलना-सी की गई है। कई जगहों पर तो मनुष्य चाहे लकड़ी के लिए तरसता रहे या उसे उनसे कैसी भी हानि क्यों न पहुँचे, पर वनों की रक्षा की जाती है, तो कई जगहों पर वनों की उपयोगिता की ओर से आँख मूँद कर वनों को नष्ट होने दिया जाता है।

पंचायत राज की सबसे बड़ी बात उसका मानवीय दृष्टिकोण है। इसके हर विभाग का संचालन इस दृष्टि से किया जाता है कि उससे अधिकतम मनुष्यों का हित हो। वनों के प्रबंध में भी इस मानवीय दृष्टिकोण को रखना होगा। इसका परिणाम यह होगा कि जहाँ आज सामान्य ग्रामीण वनों को सरकारी सम्पत्ति समझता है और उनकी उपेक्षा करता है, वहाँ पंचायती प्रबंध के अंतर्गत प्रत्येक पेड़ को ग्रामीण अपनी सम्पत्ति समझने लगेगा। यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपनी सम्पत्ति का संरक्षण तथा संवर्धन करता है। वह बिना आवश्यकता के अपनी सम्पत्ति का हनन नहीं करता। वनों पर यह बात पूरी तरह से लागू होती है। वनों के प्रबंध की पद्धति को बदलकर देश के करोड़ों देहातियों का उनके प्रति वर्तमान दृष्टिकोण बदला जा सकता है। इसके लिए वनों का वर्गीकरण फिर से करना होगा। अपनी सुविधा के लिए हम वनों का वर्गीकरण इस प्रकार कर सकते हैं—

१. सुरक्षित वन।

२. पंचायती वन।

वे वन जो गाँव से काफी दूर और ऐसे स्थानों पर, जहाँ

खेती-बाड़ी करना सुगम न हो, स्थित हैं, सुरक्षित वन होंगे। शेष सभी वन पंचायती वन होंगे। पंचायती वनों को निम्न-लिखित तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—

१. इमारती लकड़ी के वन।
२. ईंधन तथा घास के वन।
३. खेती-बाड़ी की रक्षा तथा वृद्धि के लिए उगाये गये वन।

सुरक्षित वन सीधे वन विभाग के नियंत्रण में होंगे। शेष सभी वन, जो ग्रामों के निकट स्थित हैं, पंचायती वन होंगे, और उनका प्रबन्ध पंचायतें ही करेंगी। किन्तु इन वनों का प्रबन्ध भी वन विभाग की मंत्रणा तथा उसकी योजना के अनुसार ही होगा। पंचायती वनों के कर्मचारी इस प्रकार होंगे—हर पंचायत के विस्तार के अनुसार वनज्ञ (फोरेस्टर) तथा वनरक्षक (फोरेस्ट गार्ड); तहसील के स्तर पर तहसील पंचायत के अधीन अथवा राज्य शासन के अधीन एक फोरेस्ट रेंजर होगा जो पंचायतों को उपयोगी सलाह-सम्मति देगा। इस प्रकार का पंचायती प्रबन्ध पूर्णतः वैज्ञानिक होगा, पर इसमें वनों से होनेवाली आय पंचायतों को जायेगी, और उन पर होनेवाले व्यय का भार भी उन्हीं पर पड़ेगा। ऐसे पंचायती वनों को हर ग्रामीण अपना समझेगा और उनकी उचित रक्षा भी करेगा।

वनों की इस सम्पदा का दुरुपयोग नहीं किया जायेगा। उनका प्रबन्ध एक निश्चित योजना के अनुसार होगा। हाँ, यह अवश्य है कि पंचायतें अपने क्षेत्र के निवासियों की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखेंगी। पंचायतें वन-उपज के विक्रय तथा उपयोग सम्बन्धी नियम बनायेंगी। इसकी आय पंचायत कोष में जायेगी।

सारे देश के लिए उपयुक्त योजना बनाकर उसके अनुसार कार्य किया जाये तो कुछ ही वर्षों में हर ग्राम अपनी वन-सम्बन्धी आवश्यकताओं के बारे में पूर्णतः आत्म-निर्भर हो जायेगा ।

पथ-निर्माण

हमारे देहातों की एक बड़ी कमी यह है कि देहाती क्षेत्रों में आवागमन के साधनों का कोई उचित प्रबन्ध नहीं है । अधिकतर गाँवों तक पहुँचने के लिए सुविधाजनक सड़कों का अभाव है । पक्की सड़कें आमतौर पर नगरों को ही आपस में मिलती हैं—अक्सर देहात इनसे बचे रहते हैं । वर्षा में तो देहाती इलाकों में जाना और भी कठिन हो जाता है । इसलिए पंचायतों का एक बड़ा कार्य ग्रामीण क्षेत्रों में पथ-निर्माण का कार्य होना चाहिये । देश भर में ऐसी सड़कों का जाल-सा बिछ जाना चाहिये कि वे देश के लाखों गाँवों तक पहुँच सकें और उनका देश के जन-जीवन से सजीव सम्बन्ध स्थापित कर सकें ।

मोटे तौर पर इस कार्य को इस तरह से किया जा सकता है कि हर पंचायत केन्द्र तक पक्की सड़क अवश्य जाये । इस सड़क का निर्माण पंचायतों के सहयोग से राज्य सरकारों को करना चाहिये । हर ग्राम तक ऐसी सड़क होनी चाहिये कि वह बारहों मास बैलगाड़ियों, घोड़ों तथा खच्चरों के चलने लायक बनी रहे । छोटे-छोटे गाँवों से लेकर पंचायत केन्द्रों तथा पक्की सड़कों (राजमार्गों) तक सड़क बनाने का कार्य पूर्णतः पंचायतों को दिया जा सकता है । इन सड़कों की मरम्मत का कार्य भी पंचायतों के ही सुपुर्द होना चाहिये ।

पर मुख्य समस्या यह है कि पंचायतों की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वे सड़कों के निर्माण तथा उनकी मरम्मत के कार्य को पूरा कर सकें। उनके पास इतना धन नहीं है कि वे मजदूरी देकर इस कार्य को करा सकें। इसका एकमात्र हल है श्रमदान तथा श्रम-शुल्क। पंचायती क्षेत्र में रहनेवाला प्रत्येक स्वस्थ वयस्क एक निश्चित मात्रा में अपना श्रम पथों के निर्माण में बिना किसी मजदूरी के लगाये। सड़कों के निर्माण में लगने-वाले सामान तथा औजार पंचायत के ही होंगे।

इसके अतिरिक्त पंचायतों द्वारा लगाये गये करों का कुछ भाग भी इस कार्य में लगाया जा सकता है। इस कार्य के लिए सरकार से कुछ सहायक अनुदान भी प्राप्त किये जा सकते हैं। पर कर लगाने के सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखनी होगी कि न तो ग्रामवासी अधिक कर दे ही सकते हैं और न इस प्रकार से प्राप्त की गई रकम पर्याप्त ही हो सकती है।

फिर पथ-निर्माण के लिए कुछ वैतनिक कर्मचारी भी रखने होंगे। उनके वेतन तथा संख्या का अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है—

संख्या	मद	व्यय
१. एक ओवरसियर “६०६० वेतन + ३०६० भत्ता”		१०८०६०
२. एक चपरासी “२०६० वेतन + २०६० भत्ता”		४८०६०
३. वैतनिक कारीगर		२५८०६०
४. सामान आदि (वार्षिक)		१०००६०
		५१४०६०

इस खर्च का अधिकांश भाग तो पंचायतों के बजट से ही

प्राप्त किया जायेगा, पर इसके लिए निम्नलिखित अतिरिक्त साधनों का भी उपयोग किया जा सकता है—

१. इस कार्य के लिए मंदिरों तथा अन्य सार्वजनिक तथा धर्मार्थ संस्थाओं से कुछ वार्षिक सहायता ली जा सकती है। इस स्त्रोत से लगभग १००० रुपया साल की आय हो सकती है। पर यह आय सभी इलाकों में बराबर नहीं होगी।

२. पंचायत क्षेत्र में रहनेवालों से इस कार्य के लिए विशेष दान लिये जा सकते हैं।

३. जो लोग श्रमदान न करें उनसे बदले में नकद रकम ली जाये। यह रकम किये जा सकनेवाले कार्य के अनुपात में होनी चाहिये।

इस कार्य के लिए ली गई सरकारी रकम तथा अन्य प्रकार से प्राप्त रकम से एक विशेष कोष की स्थापना की जा सकती है। यह कोष पंचायत तथा पंचायत ओवरसियर के नियन्त्रण में रहेगा। पंचायत के वार्षिक बजट में ऐसे कार्यों के लिए विशेष प्रावधान रखा जायगा।

इस प्रकार इन साधनों से प्राप्त आय तथा जनता के सक्रिय सहयोग से थोड़े ही काल में ग्राम-ग्राम तक सड़कें पहुँच जायेंगी और ग्रामों की उन्नति का एक नया मार्ग खुल जायेगा।

खाद्य

दूसरे विश्व युद्ध के आरम्भ तक हमारा देश अन्न के उत्पादन में न केवल स्वावलम्बी ही था, बल्कि वह लाखों मन अनाज का निर्यात भी करता था। ऐसी दशा में भारत में खाद्य पदार्थों के उत्पादन और उसके उत्पादकों की समस्याओं की ओर कम लोगों

का ध्यान गया था । पर द्वितीय विश्व युद्ध के आरम्भ होने के बाद यह समस्या पूरी भयंकरता के साथ अचानक हमारे सामने आई । उसके बाद से यह समस्या वैसी ही विकट बनी रही है । देश के विभाजन के बाद यह और अधिक गम्भीर हो गई ।

यद्यपि इस समय अन्न समस्या हल हो गई-सी लगती है, पर फिर भी अपने पिछले अनुभव के आधार पर यह उचित होगा कि हम भविष्य के प्रति सावधान रहें । इसके लिए दो बातों पर ध्यान देना होगा—

१. देश में खाद्य-पदार्थों का उत्पादन बढ़ाया जाये ।

२. मूल्य उचित स्तर पर रखा जाये ।

पंचायत राज का ध्येय यह है कि पंचायत क्षेत्र में पूर्ण आत्म-निर्भरता प्राप्त की जाये । इस दृष्टि से खाद्य पदार्थों के उत्पादन में भी आत्म-निर्भर होना पंचायत राज की पूर्ण सफलता के लिए आवश्यक है । पर इसमें मौलिक धारणा यह है कि पंचायत राज में हर समस्या को जहाँ तक सम्भव हो, ग्राम के दृष्टिकोण से ही सुलझाने की कोशिश की जाती है । इसलिए इस प्रश्न को भी इसी दृष्टिकोण से लेना होगा ।

इस समस्या को पूर्ण रूप से हल करने के लिए हर पंचायत को अपने क्षेत्र से आवश्यक जानकारी प्राप्त करनी होगी । जानकारी के इन आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए हर पंचायत को इस कार्य के लिए एक उपयुक्त कर्मचारी नियुक्त करना होगा । यह कर्मचारी पंचायत क्षेत्र की जनसंख्या, व्यक्तियों के व्यवसायों तथा पेशों के अतिरिक्त क्षेत्र की कृषि के भी व्योरेवार आँकड़े एकत्र करेगा । इसमें अनाज की कमी-बेशी और कृषि योग्य

भूमि का विवरण भी होगा। इन आँकड़ों से प्राप्त जानकारी के आधार पर पंचायतों को बंजर भूमि को काश्त में लाने के लिए समुचित अधिकार दिये जा सकते हैं।

फिर इसी जानकारी के आधार पर पंचायतें अपने-अपने क्षेत्र में कृषि को उन्नत करने तथा उपज बढ़ाने की योजनाएँ तैयार करेंगी। वे कृषकों के लिए खाद तथा अच्छे बीज व औजार उपलब्ध करेंगी तथा उन्हें उचित मन्त्रणा भी देंगी।

किसान से सीधा सम्बन्ध होने के कारण पंचायतें उनकी सभी समस्याओं से परिचित होती हैं और यदि उन्हें पर्याप्त अधिकार दे दिये जायें तो वे उसकी समस्याओं का हल भी निकाल सकती हैं।

बहुदेशीय सहकारी समितियाँ इस समस्या के हल में बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। पंचायतें कृषि में सहकारिता को प्रोत्साहन दें। ग्राम की सारी कृषि-भूमि पर कृषिकार्य इस प्रकार बनाई गई सहकारी समितियों द्वारा किया जाये। सभी कृषक मिलकर कार्य करें। उत्पादन बहुदेशीय सहकारी समिति को बेच दिया जायेगा। गाँव की समस्त भूमि की मालगुजारी तथा अन्य करों का भुगतान इसी रकम से इकट्ठा कर दिया जायेगा। फिर प्रत्येक व्यक्ति को उसकी भूमि के अनुसार उसका अंश दे दिया जायेगा। इस व्यवस्था का एक दूसरा परिणाम यह होगा कि भूमि का विभाजन और उप-विभाजन रुक जायेगा। इसके अतिरिक्त सारी भूमि, काश्त तथा बिक्री के सामूहिक रूप से किये जाने से जहाँ एक तरफ़ खर्च में कमी और उपज में बढ़ती होगी, वहाँ सारे-के-सारे ग्राम के लिए योजना बनाना भी आसान हो जायेगा। इसी आधार

पर विभिन्न पंचायत क्षेत्रों, तहसीलों, जिलों तथा राज्यों के प्रयत्नों में समन्वय भी स्थापित किया जा सकेगा ।

खाद्य क्षेत्र में पंचायतें मुख्यतः नीति-निर्देश ही करेंगी । बाकी कार्य तो बहुदेशीय सहकारी समितियों को करना होगा । फिर उपज का विक्रय भी सहकारी समितियों के द्वारा ही होगा, अतः मूल्य निर्धारण की समस्या भी अपने-आप हल हो जायेगी ।

कर-वसूली

पंचायत क्षेत्रों में कर लगाने की समस्या भी बड़ी उलझन-पूर्ण है । आजकल ग्रामीणों पर कर का बोझ बहुत अधिक है । वे कई प्रत्यक्ष तथा परोक्ष कर देते हैं । साथ ही कर लगाने की पद्धति भी इतनी जटिल है कि करदाता को करों के बदले में प्राप्त सुविधाओं का अनुभव भी नहीं होता । वैसे भी म्यूनिसिपल कर, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कर तथा राज्य व केन्द्र के करों का बोझ उन्हीं पर पड़ता है । परन्तु जब वे देखते हैं कि उन करों द्वारा प्राप्त धन का सबसे अधिक भाग शहरी जनता पर ही व्यय हो जाता है, तो यह उन्हें स्वाभाविकतया बुरा लगता है । पंचायत राज का ध्येय यह है कि ग्रामीण करों की एक ऐसी पद्धति का निर्माण किया जाये जिसका प्रबन्ध पूर्णतः ग्रामीणों के हाथ में हो और वे अपने हितों की सुरक्षा स्वयं करें । यह कर लगाने की पद्धति केन्द्र तथा राज्य के करों में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी । परन्तु यह पद्धति जिला, तहसील तथा नागरिक स्तर पर दोहरे करों को नहीं रहने देगी । इससे ग्रामीणों के मन में आशा तथा स्वावलम्बन के भाव उत्पन्न होंगे । शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सफाई आदि

के नाम पर जो कर लगाये जाते हैं वे पंचायत राज की धारणा के अनुसार गलत हैं, क्योंकि ये कर ऐसी सुविधाओं को प्राप्त करवाने के लिए लगाये जाते हैं जो हर मानव को वैसे ही मिलनी चाहियें। पंचायत राज की पद्धति के आधीन कर लगाने के समय अधिक जोर इस बात पर होगा कि आराम तथा विलास की वस्तुओं पर अधिक कर लगाये जायें तथा आवश्यकता की वस्तुओं पर कर न लगें।

इस योजना के अधीन स्वशासन का एक ही क्रम होगा जो पंचायतों तथा जिला पंचायतों में विभक्त होगा। सभी पंचायतें एक ही कानून द्वारा नियमित होगी। इससे कोई कर दोहराया नहीं जा सकेगा। इन आधारभूत सिद्धान्तों को देखते हुए हमारे मत में निम्न कर लगाये जाने चाहियें—

ग्राम पंचायत

१. मालगुजारी पर जो स्वाई (स्थानीय या लोकल रेट) ली जाती है, वह पंचायत को दी जाये। मालगुजारी अर्थात् राजस्व की वसूली का काम भी ग्राम पंचायत के सुपुर्द किया जाये। नम्बरदारी तथा जैलदारी की प्रथा भी समाप्त की जाये।

२. अनाज को छोड़ पंचायत क्षेत्र की अन्य उपज पर निर्यात कर।

३. सूची के अनुसार आराम तथा विलास की तमाम वस्तुओं के आयात पर कर।

४. खेल-तमाशों पर कर।

५. खुशी के संस्कारों पर शुल्क (सेस)।

नगर पंचायत

१. आराम तथा विलास की वस्तुओं के आयात पर कर ।
२. तह बाजारी कर ।
३. घरों पर कर ।
४. गाड़ियों पर कर ।
५. खेल-तमाशों पर कर ।
६. संस्कारों पर कर ।

तहसील पंचायत

इस स्तर पर कोई कर न होगा और इस स्तर की पंचायत का कोष सदस्य पंचायतों के शुल्क द्वारा पूरा किया जायेगा ।

जिला पंचायत

१. पेशा-कर
२. मेला-कर
३. गाड़ियों तथा बारबरदारी के पशुओं पर कर ।

प्रत्येक ग्राम, नगर तथा पुर पंचायत अपनी आय का ५ प्रतिशत तहसील पंचायत कोष को देगी । तहसील तथा जिला पंचायत की कर द्वारा आय की चर्चा तत्सम्बन्धी अध्यायों में की जायेगी । इन करों द्वारा ग्राम पंचायत की आनुमानिक आय लगभग इस प्रकार होगी—

१. मालगुजारी की स्वाई से हुई आय भिन्न-भिन्न होगी, पर इसे औसतन १००० रुपया माना जा सकता है ।

२. इस शीर्षक के अधीन कर योग्य वस्तुओं की सूची हर पंचायत के लिए भिन्न-भिन्न होगी । यह सूची बड़े सोच-विचार के बाद बनानी पड़ेगी । यह ध्यान रखना पड़ेगा कि इस शीर्षक

के अधीन कर लगाने का दो पंचायतों का अधिकार क्षेत्र एक-दूसरे में न मिल जाये। यह भी देखना होगा कि किसी भी शीर्षक के कर का बोझ करदाता पर बहुत भारी न हो जाये। इस मद से लगभग ३००० रुपये की आय हो सकती है।

३. निर्यात कर—यह कर निर्यात योग्य वस्तुओं तथा उनकी मात्रा पर निर्भर होगा। एक सामान्य अनुमान के अनुसार इससे लगभग ६०० रुपये की आय होगी।

४. खेल-तमाशों पर कर से लगभग ५०० रुपये प्रति वर्ष आय का अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार करों से हुई कुल आय लगभग ६४०० रुपये होगी। यह सभी कर पंचायत के प्रस्तावित कर्मचारी जमा कर सकेंगे और उनकी वसूली में पंचायत कोष पर कोई अतिरिक्त भार नहीं पड़ेगा।

न्याय

जबतक पंचायतों को अपने-अपने क्षेत्रमें न्याय-सम्बन्धी अधिकार न दिये जायेंगे, तबतक उनकी सत्ता निरर्थक-सी होगी। अगले अध्याय (सात) में इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया गया है।

विविध

इस अध्याय में अबतक जिन प्रश्नों पर विचार किया गया है, उनके आधार पर ग्राम पंचायतों की आय-व्यय का निम्न अनुमान लगाया जा सकता है—

ग्राम पंचायत की आनुमानिक आय-व्यय

आय

संख्या	मद	आनुमानिक आय
१.	ग्राम पंचायत के आधीन प्रारम्भिक पाठशालाओं से संलग्न कृषिक्षेत्र (१० एकड़)	
(क)	५ एकड़ में अन्न	३२०० रुपया
(ख)	२½ एकड़ में धनदाई फसलें (कैश क्राप्स)	२६०० रुपया
(ग)	२ एकड़ में फल	१००० रुपया
(घ)	½ एकड़ में सब्जी	२०० रुपया
		७००० रुपया
	ऐसे ५ क्षेत्रों की आय	३५००० रुपया
२.	सहकारी समिति से प्राप्त शुल्क	१२३० रुपया
३.	जंगल, घास, इमारती या अन्य लड़की की बिक्री	२००० रुपया
४.	कोर्ट फीस तथा अन्य टिकिटों की बिक्री	६०० रुपया
५.	कर—	
(क)	मालगुजारी पर २५ प्रतिशत स्वाई	१००० रुपया
(ख)	आराम तथा विलास की वस्तुओं पर	
	आयात कर	३००० रुपया
(ग)	निर्यात कर	६०० रुपया
(घ)	संस्कारों तथा खेल-तमाशों पर कर	५०० रुपया
६.	मन्दिर आदि द्वारा सहायता	१००० रुपया
७.	पथ परिवर्धन कोष	१००० रुपया
	कुल आय	४६,२३० रुपया

संख्या	व्यय मद	आनुमानिक व्यय
१. शिक्षा—		
(क) पाठशालाओं के लिए १० अध्यापक (वेतन ५० + २५ रुपये प्रति अध्यापक)		६००० रुपया
(ख) इसी प्रकार १० चपरासी (२० + २५ रुपया)		५४०० रुपया
(ग) इसी प्रकार पुस्तकें तथा स्टेशनरी (१००० रुपया प्रति स्कूल)		५००० रुपया
(घ) कृषि क्षेत्र के बैल तथा उनकी खुराक		२००० रुपया
(ङ) एक गौरक्षक (२० + २५ रुपया)		५४० रुपया
		२१,६४० रुपया
२. स्वास्थ्य—		
(क) एक वैद्य अथवा डाक्टर (५० + ३० रुपया)		८६० रुपया
(ख) एक कम्पाउण्डर (३५ + २५ रुपया)		७२० रुपया
(ग) एक वार्ड कुली (२० + २० रुपया)		४८० रुपया
(घ) दवाइयाँ		१००० रुपया
(ङ) दाई (नर्स) (७० रुपया)		८४० रुपया
		४००० रुपया
३. पशु चिकित्सा—		
(क) स्टॉक असिस्टेंट (३५ + २५ रुपया)		७२० रुपया
(ख) दवाइयाँ आदि		५०० रुपया
		१२२० रुपया

४. वन—

(क) एक फोरेस्टर (४५ + ३५ रुपया)	६६० रुपया
(ख) वनरक्षक (२५ + २० रुपया)	५४० रुपया
	१५०० रुपया

५. पथ निर्माण—

(क) एक ओवरसियर (६० + ३० रुपया)	१०८० रुपया
(ख) एक चपरासी (२० + २० रुपया)	४८० रुपया
(ग) मजदूरों का एक जत्था (गैंग)	२४०० रुपया
	३९६० रुपया

६. साधारण खर्च—

(क) मंत्री (१५० + ५० रुपया)	२४०० रुपया
(ख) क्लर्क (४० + २० रुपया)	७२० रुपया
(ग) आँकड़ा लेखक (४० + २० रुपया)	७२० रुपया
(घ) चपरासी (२० + २० रुपया)	४८० रुपया
(ङ) पंच (३ रुपया प्रति साप्ताहिक बैठक)	१२४८ रुपया
(च) अन्य आवश्यक व्यय	१००० रुपया
	६५६८ रुपया

कुल व्यय का जोड़—३६,१८८ रुपया

कुल आय	४६,२३० रुपया
कुल व्यय	३६,१८८ रुपया
बचत	१०,०४२ रुपया

इसमें से २००० रुपया तो तहसील पंचायत को जायगा,

२००० के लगभग सड़कों आदि के निर्माण कार्य पर खर्च होगा और शेष से भवन कोष संग्रह किया जायेगा ।

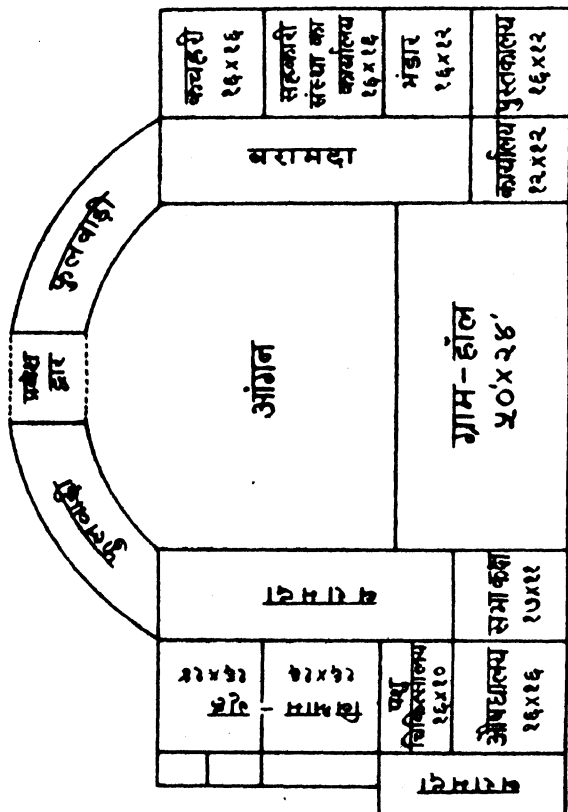
पंचायत घर

पंचायत इस प्रकार ग्राम के विविध प्रकार के कार्यों के लिए एक केन्द्र बन जायेगी । धीरे-धीरे उसका कार्य बढ़ता जायगा । हर कार्य के लिए स्थान की आवश्यकता होगी । पंचायत के विभिन्न कार्यालय एक “पंचायत घर” में रहेंगे । यह भवन पंचवर्षीय योजना के अन्दर बनाया जा सकता है । इस पंचायत घर का नक्शा हर स्थान पर एक-सा ही तो अधिक अच्छा होगा । इसमें पंचायत के समस्त कार्यालयों के लिए स्थान रहेगा । इसमें एक बड़ा कमरा (हाल) भी रहेगा और एक ऐसी जगह भी बनाई जायेगी जो विश्राम गृह (रेस्ट हाउस) का काम दे सके । एक ऐसे ही नमूने के पंचायत घर का नक्शा अगले पृष्ठ पर दिया गया है ।

इस नक्शे से पंचायत घर का तसव्वर बन सकता है । जो ग्राम पंचायतें इसे ५ वर्ष से कम अवधि में बना सकें उन्हें ऐसा करने की छूट होनी चाहिये ।

यह एक मानी हुई बात है कि किसी आन्दोलन को स्थिरता प्रदान करने के लिए उसके अपने भवन में उसका दफ्तर होना बड़ा सहायक सिद्ध होता है । अतः इस कार्य की ओर पंचायतों का ध्यान बहुत शीघ्र जाना चाहिये ।

पंचायत घर



पंचायती न्याय

अपराध और भगड़े के मूल के बारे में हमारे यहाँ पुरानी कहावत है जिसमें इनके चार मूल कारण बताये गये हैं—जर, जमीन, जोरू और जायदाद । सामाजिक सम्बन्धोंमें जब से निजत्व और मेरे-तेरे की भावना का उदय हुआ, तब से समाज का पुराना शांतिपूर्ण वातावरण भंग हो गया, और बात-बात पर भगड़ों की शुरूआत होगई । अपराध और भगड़े के साथ-साथ बदले की—प्रतिकार की—भावना का भी उदय हुआ । बदले की यह भावना कई अन्य गुरुतर अपराधों का कारण बन जाती है । खासतौर पर उन इलाकों में, जहाँ शासन तंत्र अभी तक सुव्यवस्थित या सुदृढ़ नहीं हुआ है, वहाँ यह भावना बहुत प्रबल होती है । उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त के कबायली इलाके के पारिवारिक और कबायली बदलों की बात सभी जानते हैं ।

इससे एक बात तो स्पष्ट हो जाती है, और वह यह कि बदले और अपराध की भावना को रोकने के लिए व्यवस्था का होना आवश्यक है । व्यवस्था से सामाजिक सम्बन्ध नियमित होते हैं और उसकी अनुपस्थिति से अराजकता उत्पन्न होती है । लेकिन साथ ही यह बात भी सत्य है कि मनुष्य के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में, जब नियमित सामाजिक जीवन और व्यवस्था का उदय भी नहीं हुआ था, इस प्रकार के अपराध लग-भग बिल्कुल नहीं होते थे । संभवतः इसका कारण था आत्मा

पर नियंत्रण । पर वास्तव में समाज में ऐसी अवस्था कभी थी भी या नहीं, अथवा कभी आयेगी भी या नहीं, इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता ।

लेकिन यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि सामाजिक जीवन के उदय के साथ-ही-साथ व्यवस्था की आवश्यकता का अनुभव किया गया और मनुष्य अपने आचरण को नियमित करने के लिए कुछ नियम बनाने पर मजबूर हुआ । समाज में यदि इस प्रकार का नियमन न हो तो बात-बात पर लोगों को जीवन से हाथ धोना पड़े । व्यवस्था के अंतर्गत पीड़ित व्यक्ति को संतुष्टि देने की और बदले की भावना को शांत करने की जिम्मेदारी समाज अपने ऊपर ले लेता है । इस प्रकार वह व्यक्ति के अपने-आप प्रतिकार प्राप्त करने के अधिकार को अपने हाथ में ले लेता है ।

साधारण मनुष्य में सभी तरह की भावनाएँ होती हैं । जहाँ उसके स्वभाव में दया, करुणा, सहिष्णुता, परोपकार आदि सद्भावनाएँ होती हैं, वहाँ साथ-ही-साथ उसमें ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, लोभ, क्रोध आदि दुर्भावनाएँ भी होती हैं । आवेश में आने से मनुष्य अपना संतुलन खो बैठता है और अपराध और प्रतिकार में प्रवृत्त हो जाता है ।

अपराध का अध्ययन करनेवालों के अनुसार अपराध और झगड़े के कारण निम्न होते हैं—

१. आवश्यकता ।
२. मानसिक संतुलन का अभाव ।
३. कर्तव्य और अधिकार की धारणा में भेद ।
४. मानसिक अथवा शारीरिक विकार ।

५. बदले की भावना ।

हर प्रकार का भगड़ा किन्हीं दो व्यक्तियों अथवा व्यक्तियों के समूहों में होता है । इसी बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि हर प्रकार के अपराध का समाज से सीधा सम्बन्ध होता है । अपराध के बदले में समाज जिस प्रतिकार की व्यवस्था करता है उसे न्याय कहते हैं । दूसरे शब्दों में न्याय ऐसे सिद्धान्तों का योग है जिनके आधार पर भगड़ों को सुलझाने की या उनका निर्णय करने की चेष्टा की जाती है । न्याय के सिद्धान्तों के आधार पर निर्णय करनेवाले व्यक्ति को न्यायाधीश, निर्णायक, मध्यस्थ अथवा पंच कहा जाता है ।

न्याय का ध्येय

न्याय का ध्येय समाज में व्यवस्था बनाये रखना है । इस व्यवस्था को भंग करने के कारणों की भी हम चर्चा कर चुके हैं । स्वभावतः मानव अपने अधिकार के छीने जाने या अपने साथ अत्याचार होने पर बदला लेना चाहता है । मनुष्य ने अपने सामूहिक अनुभव के आधार पर यह जाना कि व्यक्ति को अपना न्याय स्वयं करने का अधिकार देने से अपराध की एक ऐसी शृंखला बन जाती है जो लगातार बढ़ती ही जाती है । इससे समाज में न्याय की धारणा उत्पन्न हुई और व्यक्ति को बदले के भावों पर अवलम्बित न्याय करने के अधिकारों से वंचित कर दिया गया । इससे स्पष्ट हो जाता है कि न्याय का एक ही ध्येय है और वह है पीड़ित व्यक्ति को संतुष्टि प्रदान करना । यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति के निकटवर्ती सम्बन्धी की हत्या

कर दे तो स्वभाव से ही इस तरह से आहत व्यक्ति के हृदय में बदले की भावना जागती है। यदि समाज ऐसे अपराधों के लिए दण्ड की व्यवस्था न करे तो प्रतिशोध की इस भावना के फल-स्वरूप वह उसकी हत्या कर देगा, और संभवतः इसके प्रतिकार-स्वरूप इस प्रकार मारे गये व्यक्ति का कोई संबंधी उसकी। इस प्रकार हत्याओं का एक क्रम शुरू हो जायगा। इससे समाज के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो सकता है। अतः न्याय का एक ध्येय प्रतिकार की व्यवस्था करना है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि अपराध का कारण मानसिक सन्तुलन का भंग होना भी है। जहाँ ऐसे कारण मूल में होते हैं वहाँ दण्ड अथवा न्याय यदि प्रतिशोधात्मक प्रतिकार हो रह जाय तो मानव की मौलिक प्रवृत्तियों के विकास में अवरोध पड़ सकता है। ऐसे स्थानों पर न्याय का ध्येय सुधारात्मक होता है। न्याय करते समय इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिये। परन्तु कुछ ऐसे भी अपराधी होते हैं जिनके लिए अपराध करना एक स्वाभाविक बात होती है। उनका सुधार कठिन होता है और ऐसे अपराधी को यदि दण्ड न मिले तो इससे अन्य व्यक्तियों को भी अपराध करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। अतः न्याय का एक और ध्येय यह भी होता है कि भविष्य में अपराध को होने से रोका जाये। न्याय का यह ध्येय निरोधात्मक होता है।

यह मानव स्वभाव की विशेषता है कि जब मनुष्य कोई बुरा काम, व्यापार या अपराध करता है या आवेश में आता है, तो बाद में उसे स्वाभाविक पश्चात्ताप होता है। मनुष्य की पश्चात्ताप करने की यह सहज भावना उसके सुधार के लिए उपयुक्त

वातावरण उत्पन्न करती है। पुराने अपराधियों की बात तो छोड़ी जा सकती है, पर सामान्य मनुष्य जबतक प्रायश्चित्त न कर ले उसके हृदय में पश्चात्ताप की आग जलती रहती है। मनुष्य के स्वभाव की यह स्वाभाविक विशेषता कई बार उसे सत्य प्रकट करने के लिए प्रोत्साहित करती है। परन्तु यदि सत्य प्रकट करने पर उसे अपनी धारणा से अधिक दण्ड पाने की संभावना हो तो वह सत्य प्रकट करने से हिचकिचाता है और अपने अपराध को छिपाने की चेष्टा करता है। अतः न्याय करने-वाले को यह ध्यान रखना चाहिये कि मनुष्य की यह सहज भावना कुण्ठित न होने पाये। एक बार इसका अवरोध होने पर यह स्वाभाविक मानसिक धारणा बदल जाती है।

इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि न्याय की परिपाटी ऐसी होनी चाहिये कि उसमें मनुष्य को सत्य छिपाने के लिए कम-से-कम अवसर मिले। न्याय करनेवाले व्यक्ति मनुष्य के स्वभाव से परिचित होने चाहियें और साथ ही उन्हें स्थानीय परिस्थितियों की भी जानकारी होनी चाहिये। साथ ही यदि न्याय का कानून बहुत उलझनोंवाला हो तो सामान्य व्यक्ति के लिए उसे समझना कठिन हो जाता है और ऐसी स्थिति में कानून मनुष्य का स्वामी बन जाता है और कानूनी शब्दजाल द्वारा सत्य को छिपाना और अपराधी को छुड़ाना एक आदरणीय कला समझी जाने लगती है।

वास्तव में कानून जितना अधिक सुलभ तथा सरल हो उतना ही अच्छा है। न्याय का कार्य विशेषज्ञों का न होकर मनुष्य के स्वभाव को समझनेवाले ईमानदार व्यक्तियों का कार्य होना

चाहिये । इसके लिए न्याय की पंचायत पद्धति को अपनाना ही अधिक उचित दीखता है । इसका कारण यह है कि न्यायाधीश में अन्य आवश्यक गुणों के अतिरिक्त ईमानदारी तथा पक्षपात-हीनता का होना भी जरूरी है । साथ ही उसकी निर्णय शक्ति भी अधिक विकसित होनी चाहिये । यह मानी हुई बात है कि शहरों की अपेक्षा ग्रामों में रहनेवालों में ये गुण अधिक होते हैं । गाँवों में न्याय पंचायतें बड़े पुराने काल से चली आ रही हैं और आज भी पंच निर्णय की निष्पक्षता के बारे में कहानियाँ सुनी जा सकती हैं । गाँवों में लगभग सभी व्यक्ति विवाद के कारणों से परिचित होते हैं । अतः वहाँ सत्य का छिपाना कठिन होता है । फलस्वरूप न्याय भी सुगमतापूर्वक प्राप्त हो सकता है ।

पंचायती न्याय की एक दूसरी विशेषता यह है कि न्याय पद्धति की सुगमता के कारण पक्षों को किसी भी समय आपसी समझौता करने की छूट रहती है । यही नहीं, खुद इस न्याय पद्धति का मूल उद्देश्य भी यही होता है कि जैसे भी हो पक्षों में झगड़े को बढ़ने देने की संभावनाओं को कम-से-कम किया जाये । पंचायतें सुगमतापूर्वक इस प्रकार के समझौते—राजी-नामे—कराने की साधन बन सकती हैं ।

राजीनामा

ग्रामतौर पर सभी सामान्य विवादों में विरोधी पक्षों में मध्यस्थता करायी जा सकती है । मध्यस्थता का कार्य वही व्यक्ति या व्यक्ति-समूह कर सकता है जो दोनों पक्षों की बात, स्थानीय रीति-रिवाज तथा झगड़े के मूल से परिचित हो । सामान्य न्याय में

दोनों पक्ष अदालत में अपनी-अपनी दलीलें देते हैं और अदालत अपनी समझ के अनुसार मामले का फैसला कर देती है। पर राजीनामे में फैसला दोनों पक्षों की सहमती और रजामन्दी से होता है। इसलिए ऐसे सभी मामलों में, जहाँ विवाद विचार-भेद अथवा प्रतिशोध की भावना से उठा हो, यह पद्धति बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है, क्योंकि इसका उद्देश्य झगड़े के के मल को दूर कर, मन मुटाव को समाप्त कर, सामान्य सन्बन्धों को फिर से कायम करना है। समाज की प्रगति के लिए यह पद्धति आवश्यक है।

राजीनामे के रास्ते में जो सबसे बड़ी रुकावट है, वह है दोनों पक्षों का अहंभाव। दोनों पक्ष इस बात पर अड़े रहते हैं कि उन्हीं की बात ठीक है। अतः समझौते के लिए पहल-कदमी करने में दोनों को झिझक होती है। ऐसी स्थिति में यदि कोई तीसरा व्यक्ति या व्यक्तियों की संस्था उनको निकट लाने की कोशिश करे तो राजीनामे का रास्ता खुल जाता है। ग्रामों तथा नगरों में इस प्रकार की संस्थाएँ बनाकर इस कार्य को सुगम किया जा सकता है। देश के अधिकांश विचारक इस मत का समर्थन करते हैं, और विभिन्न राज्यों में पंचायतों को इस प्रकार के समुचित कानूनी अधिकार देने की योजनाएँ बनाई भी जा रही हैं। इसके अन्तर्गत पक्षों के लिए यह जरूरी हो जायेगा कि न्यायालय या न्याय पंचायत में मुकदमा पेश करने से पूर्व वे अपनी पंचायत में उसकी मध्यस्थता कराने की कोशिश करें।

इसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि अधिकांश मामलों का राजीनामे द्वारा फैसला करना संभव हो जायेगा। फलस्वरूप

मुकदमेबाजी से उत्पन्न होनेवाले अनेकों दोष जाते रहेंगे ।

यह पूछा जा सकता है कि राजीनामा किस-किस प्रकार के विवादों में हो सकता है । स्पष्ट है कि इस प्रश्न का उत्तर सुगमतापूर्वक नहीं दिया सकता । हमारे मत में सभी प्रकार के अपराधों को इन तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है—

- (१) व्यक्तिगत ।
- (२) सामाजिक ।
- (३) स्वाभावाधीन ।

पहली श्रेणी में वे अपराध तथा कृत्य पड़ते हैं जिनका प्रभाव एक व्यक्ति अथवा सोमित व्यक्ति-समुदाय पर पड़ता है, जैसे साधारण मार-पीट तथा धन व सम्पत्ति के भगड़े । दूसरी श्रेणी में वे कृत्य आते हैं जिनका सारे समाज पर प्रभाव पड़ता है, यथा हत्या (कत्ल), बलात्कार, दंगा आदि । तीसरी श्रेणी में उन अपराधों तथा कृत्यों की गिनती है जो अपराधी के स्वभाव का अंग बन चुके हैं ।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि केवल प्रथम कोटि में पड़नेवाले अपराधों व कृत्यों को ही राजीनामे के योग्य माना जा सकता है । शेष को नहीं । इनकी लम्बी-चौड़ी सूची देना इस पुस्तक का विषय नहीं है । पर इस संक्षिप्त विचार-विमर्श से इतना अवश्य सिद्ध हो जाता है कि राजीनामे की बड़ी उपयोगिता है ।

न्याय पंचायतों का संगठन

अब हम न्याय पंचायतों के संगठन, उनके क्षेत्राधिकार तथा

शक्तियों पर विचार करेंगे ।

हम जानते हैं कि भारत में पंचायती न्याय आदिकाल से चला आ रहा है । अंग्रेजी शासन की स्थापना तक हमारे देश में यह प्रथा चलती रही पर अंग्रेजी शासन में पंचायतों के साथ-साथ पंचायती न्याय की प्रथा पर भी कुठाराघात हुआ । पर बाद में अपने शासन के हितों में अंग्रेज शासकों को इस व्यवस्था का पुन-रुत्थान करना पड़ा । इस बारे में भी हम पुस्तक में अन्यत्र विचार कर चुके हैं ।

स्वतन्त्रता के पश्चात् इस क्षेत्र में कुछ अधिक प्रयोग किये गये हैं । कई राज्यों में न्याय पंचायतों की स्थापना की जा चुकी है । पाँचवें अध्याय में हम विभिन्न राज्यों में पंचायतों के संगठन, अधिकारों तथा शक्तियों का निरूपण कर चुके हैं ।

खासकर उत्तर प्रदेश में न्याय पंचायतों के संगठन पर काफी अध्ययन किया गया है । श्री वाँचू की अध्यक्षता में नियुक्त न्यायिक सुधार समिति ने अपनी रिपोर्ट में न्याय पंचायतों के बारे में भी अपना मत प्रकट किया था । समिति की राय में न्याय पंचायतें निर्वाचन द्वारा नहीं बननी चाहियें क्योंकि इस प्रकार से स्थापित न्याय पंचायतें दलबन्दी की भावनाओं से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकतीं और पक्षपात तथा दलबन्दी के रहते हुए न्याय निष्पक्ष नहीं हो सकता । फिर इस प्रकार से निर्वाचित पंच अपने मत-दाताओं की उपेक्षा नहीं कर सकते—इससे भी न्याय की निष्पक्षता जाती रहती है ।

पर स्विज़रलैण्ड, सोवियत संघ तथा कई अन्य देशों में न्यायाधीशों को चुना जाता है । कई देशों में इन्हें अनुभवप्राप्त

वकीलों में से सरकार द्वारा छाँटकर नियुक्त किया जाता है । लेकिन अधिकांश न्यायशास्त्री इस बात को मानते हैं कि न्यायाधीशों का चुनाव नहीं होना चाहिये ।

यह तो हुई न्यायाधीशों तथा पंचों की नियुक्ति तथा चुनाव की बात । दूसरी महत्वपूर्ण बात पंचायतों के क्षेत्राधिकार की है । इस पर काफी मतभेद है । इस बारे में सामान्य मत तो यही है कि न्याय पंचायत का क्षेत्राधिकार ग्राम पंचायत के अधिक्षेत्र जितना ही होना चाहिये । न्याय पंचायत का क्षेत्राधिकार बड़ा होने से न्याय प्राप्त करना सुलभ तथा सुविधापूर्ण नहीं रहता और उसमें उलझनें आने लगती हैं । जनता भी प्रारम्भिक न्याय के लिए दूर जाना पसन्द नहीं करती । उत्तर प्रदेश में ३ से ५ गाँव सभाएँ एक न्याय पंचायत क्षेत्र में आती हैं ।

साधारणतया हर विवाद के लिए एक नयी पंच-पीठिका बनना असुविधाजनक समझा जाता है । पर इसके कई लाभ भी हैं । जहाँ पंचायती न्याय में निकटवर्ती ज्ञान प्राप्त होने के कारण सत्यानुसंधान सुलभ हो, वहाँ २ या ३ पंचायतों को इकट्ठा करके एक ऐसी पीठिका स्थापित की जा सकती है जिसके सदस्य किसी भी पक्ष से किसी प्रकार सम्बन्धित न हों । इस तरह न्याय में निष्पक्षता की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं । पीठिका के निर्माण का अधिकार केवल सरपंच के ही पास रहने में यह आपत्ति उठाई जाती है कि इससे निष्पक्षता की सम्भावनाएँ कम हो जाती है ।

जहाँतक न्याय पंचायतों का सम्बन्ध है, उसके बारे में यह कहा जा सकता है—

(१) साधारणतया न्याय पंचायत का क्षेत्र इतना होना चाहिये

कि उसके दूरवर्ती ग्रामों के वासी भी केन्द्र में जाकर काम-काज करके सायंकाल तक घर लौट सकें ।

(२) न्याय पंचायत के पंचों की संख्या ६ से अधिक नहीं होनी चाहिये ।

(३) न्याय पीठिका के सदस्यों की संख्या ३ होनी चाहिये ।

(४) पीठिका का निर्माण इस प्रकार होना चाहिये कि बारी-बारी से सबके नाम आ जायें ।

(५) वादियों से सम्बन्धित पंच पीठिका पर नहीं रहने चाहियें ।

(६) विनिहित अधिकारी को पंच बन सकने की योग्यता रखनेवाले व्यक्तियों की एक सूची हर ग्राम सभा के लिए बनानी चाहिये और इन योग्य व्यक्तियों में से ग्राम सभा को बारी-बारी से पंच चुनने का अधिकार होना चाहिये ।

(७) पंचों का चुनाव सर्व सम्मति होना चाहिये ।

(८) पंचों को ७० वर्ष की आयु तक पदासीन रहने देना चाहिये । त्यागपत्र, अविश्वास प्रस्ताव अथवा विनिहित योग्यता न रहने पर विमोचन कर दिया जाना चाहिये ।

(९) योग्य व्यक्तियों की सूची हर वर्ष संशोधित होती रहनी चाहिये ।

(१०) निर्वाचित पंचों को उपयुक्त प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये ।

ये केवल सांकेतिक सुझाव हैं । तीन ग्राम पंचायतों के लिए साधारणतया एक न्याय पंचायत होनी चाहिये । इन पंचों को बैठक का भत्ता मिलना चाहिये ।

न्याय-पंचायतों के अधिकार

अधिकतर लोग यह मानते हैं कि पंचायती न्याय की वास्तविक सफलता आपसी समझौते में है। इससे भगड़ों में कमी होती है। पिछले कुछ वर्षों में न्याय पंचायतों ने कितने ही मामलों में राजीनामा कराया है और कितने ही व्यर्थ के मामलों को ऊपरी अदालतों में पहुँचने से रोका है। इस प्रकार उन्होंने ऊपर की अदालतों के बोझ को कम करने के सफल प्रयत्न किये हैं।

पर वर्तमान काल में न्याय पर रस्मी कानून की छाप इतनी गहरी पड़ गई है कि उसमें प्रायः न्याय के वास्तविक उद्देश्यों को ही भुला दिया जाता है। वकील की सफलता तर्क और सत्य के आधार पर वाद का उचित विश्लेषण करने में नहीं, अपितु भूटे तर्कों और कानूनी पंचों की आड़ में असत्य को सत्य और सत्य को असत्य सिद्ध करने में मानी जाती है। वर्षों के अध्ययन से प्राप्त कानूनी ज्ञान का प्रयोग कानून और न्याय से अपराधी को बचाने में किया जाता है। इसलिए यह उचित ही है कि पंचायती न्याय को वकीलों की पहुँच से बाहर रखा जाय।

यह संभव है कि कभी-कभी पंचायतों से वाद का निरूपण करने में भूल हो जाये या वे अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण कर जायें। पर ऐसी बातें अदालतों में भी तो होती हैं। केवल इसी के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि न्याय पंचायतों को न्याय सम्बन्धी अधिकार नहीं दिये जाने चाहियें। हम यह मानते हैं कि न्याय पंचायतों को सभी अधिकार एक साथ न दिये जायें। उन्हें धीरे-धीरे अधिक अधिकार प्रदान किये जाने चाहियें ताकि वे उनका उचित प्रयोग करना सीख सकें।

न्याय पंचायतों को फौजदारी, दीवानी तथा मालगुजारी, तीनों प्रकार के सामान्य अधिकार दिये जाने चाहियें। अगले पृष्ठों में इनका विवेचन किया गया है।

फौजदारी अधिकार

इस श्रेणी में आनेवाले सभी मुकदमों की पूरी सूची तो देश तथा काल के अनुसार राज्य ही बना सकते हैं, पर इसे तीन श्रेणियों में अवश्य विभक्त किया जा सकता है।

प्रथम श्रेणी में वे वाद होंगे जिन पर पक्षों की इच्छा से राजीनामा किया जा सकता है। इस तरह के वाद सुनने का अधिकार सभी न्याय पंचायतों को मिलना चाहिये।

दूसरी श्रेणी में वे वाद हो सकते हैं—

(१) जिनपर न्यायालय की अनुमति से राजीनामा किया जा सकता हो।

(२) जिनमें शान्ति रखने के लिए जमानत ली जाती हो।

(३) गुजारा प्राप्ति के प्रार्थना पत्र।

(४) जो न्याय पंचायत के अपमान से सम्बन्धित हों।

(५) चोरी व धोखा-धड़ी के वाद जिनमें सम्बन्धित सम्पत्ति का मूल्य १०० रुपये तक हो।

(६) जो टीका, अनिवार्य शिक्षा, पशु अतिक्रमण, जुआ, नशाबन्दी आदि अधिनियमों से सम्बन्धित हों।

किन्तु इस तरह के वादों को सुनने का अधिकार केवल उन न्याय पंचायतों को दिया जाना चाहिये जो १ वर्ष से न्याय कार्य कर रही हों और इस योग्य समझी जाती हों।

तीसरी श्रेणी में वे विवाद रखे जायें जो उपरोक्त दोनों

श्रेणियों से अधिक महत्त्व रखते हों और जिनका न्याय पंचायतों के क्षेत्राधिकार में रखना उपयुक्त समझा जाये। इस श्रेणी में जन सेवकों से सम्बन्ध रखनेवाले छोटे-छोटे अपराध, अधिक मूल्य की चोरी व धोखा, नाप-तौल आदि से सम्बन्धित अपराध तथा उपरोक्त श्रेणियों में न पड़नेवाले अन्य अधिनियमों के अधीन अपराध भी आ सकते हैं।

जहाँतक दण्ड का सम्बन्ध है, प्रथम श्रेणी में पड़नेवाले अपराधों के लिए न्याय पंचायतों को ५० रुपये तक जुर्माने का दण्ड देने के अधिकार प्राप्त होने चाहियें।

जिन न्याय पंचायतों को दूसरी श्रेणी के अपराधों को सुनने के अधिकार हों, उनके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें अधिक दण्ड देने के अधिकार प्राप्त हों। यहाँ दण्ड सीमा २०० रुपया जुर्माना तक बढ़ाई जा सकती है। इसके अतिरिक्त उन्हें ३ मास की अवधि के लिए जमानत लेने का अधिकार भी होना चाहिये।

जिन न्याय पंचायतों को तीसरी श्रेणी के अधिकार प्राप्त हों, उनका दण्डाधिकार ५०० रुपया जुर्माना, ६ मास तक जमानत व १ मास के कारावास के दण्ड तक बढ़ाया जा सकता है। जहाँ अपराधी जुर्माना न दे वहाँ न्याय पंचायत अपना निर्णय आगे के मजिस्ट्रेट को भेजेगी और उक्त मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य होगा कि वह दण्ड विधि के अधीन जुर्माना वसूल करके पंचायत कोष में जमा कराये। जहाँ कारावास का दण्ड दिया जाये वहाँ न्याय पंचायत अपना निर्णय उक्त मजिस्ट्रेट को भेज देगी और वह उसको अपने निर्णय की भांति यथाविधि कार्यान्वित करेगा।

जहाँ शांति आदि के लिए जमानत ली जाती हो, वहाँ

न्याय पंचायत यथाविधि जमानतनामा लेकर उसकी नकल को क्षेत्र के मजिस्ट्रेट के पास भेज देगी, ताकि वहाँ भी इस बात की सूचना रहे ।

दीवानी अधिकार

दीवानी अधिकार देने में भी इसी प्रकार का वर्गीकरण उपयोगी है । हमारे मत में शुरू-शुरू में न्याय पंचायतों को १०० रुपये तक के नकदी के वादों के सुनने के अधिकार देने चाहियें । इसके बाद, अर्थात् एक वर्ष काम करने के बाद, योग्य सिद्ध होने पर उनके अधिकार ५०० रुपये तक बढ़ाये जा सकते हैं । ३ वर्ष काम कर लेने और सुयोग्य सिद्ध होने पर ये अधिकार १००० रुपये तक भी बढ़ाये जा सकते हैं । इसी प्रकार हर अधिकार में शनैः शनैः वृद्धि होनी चाहिये । इस प्रकार की न्याय पंचायतों द्वारा पंचायती न्याय की विचारधारा और पन-पेगी । एक साल बाद, दूसरी अवस्था में, भूमि सम्बन्धी वाद सुनने के अधिकार भी उन्हें प्रदान किये जा सकते हैं; और तृतीय अवस्था में निषेधात्मक आज्ञा सम्बन्धी अधिकार भी उन्हें दिये जा सकते हैं ।

निर्णय को क्रियान्वित करने की वही विधि ठीक है जो वर्तमान पंचायत राज अधिनियमों में विनिहित है । डिगरी हो जाने के पश्चात् न्याय पंचायत स्वयं डिगरी पूर्ति का समय दे । यदि ऐसा न किया जा सके तो डिगरी क्षेत्र की कचहरी द्वारा पूरी कराई जा सकती है ।

मालगुजारी सम्बन्धी अधिकार

मालगुजारी सम्बन्धी वादों में न्याय पंचायतों के अधिकार

उनकी तीनों श्रेणियों के अनुसार क्रमशः ५० रुपये, १०० रुपये तथा २५० रुपये तक के होने चाहियें। इन वादों का क्रम दीवानी की तरह ही होता है। जहाँतक इन्तिकाल (हस्तांतरण) का सम्बन्ध है, पहले तो कोई इन्तिकाल ग्राम पंचायत की सिफारिश बिना चढ़ाया ही जाना नहीं चाहिये। जहाँ इन्तिकाल में भगड़ा हो, वहाँ उसका निर्णय न्याय पंचायत द्वारा होना चाहिये और उसके निर्णयानुसार ही इन्तिकाल चढ़ना चाहिये।

छह मास की अवधि के भीतर बेदखल किये गये व्यक्तियों को राजस्व कानून के अधीन कब्जा दिया जा सकता है। वाद का निर्णय वाद में हो सकता है। इस प्रकार कब्जा देने तथा विवाद निर्णय करने का अधिकार भी न्याय पंचायत को ही प्राप्त होना चाहिये। परन्तु विवाद निर्णय का यह अधिकार दूसरी श्रेणी की पंचायतों को ही मिलना चाहिये, अर्थात् उन पंचायतों को जो एक वर्ष काम करके द्वितीय श्रेणी के अपराधों को सुनने के अधिकार प्राप्त कर चुकी हैं।

अपील

न्यायालय के निर्णय पर संशोधनात्मक निरोध रखने के लिए ही अपील की प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ है। भूल का होना स्वाभाविक है। उसके सुधार के लिए कोई-न-कोई वैध क्रम अवश्य रहना चाहिये। इसी आशय से कानून में इस प्रकार के तीन क्रम रखे गये हैं—

- (१) पुनरावलोकन (रिव्यू)
- (२) अपील (अपील)
- (३) निगरानी (रिवोजन)

पुनरावलोकन के अधीन कार्रवाई विशेष परिस्थितियों अथवा विशेष कारणों के अधीन ही हो सकती है। पुनरावलोकन का अधिकार उसी न्यायालय को होता है जिसने वाद का निर्णय किया हो। इस अधिकार का प्रयोग सामान्यतः उन परिस्थितियों में किया जाता है जिनमें कोई तथ्य न्यायालय के सम्मुख किन्हीं ऐसे कारणों से न आ सका हो जिनपर किसी पक्ष का काबू न हो और फलस्वरूप निर्णय ठीक न हो सका हो। न्याय पंचायतों में ऐसी परिस्थितियों का उत्पन्न होना लगभग असम्भव ही होता है क्योंकि पंचों का निकट संपर्क होने के कारण लगभग सभी तथ्य सम्मुख आ जाते हैं। फिर उनकी कार्यविधि में भी कानूनी पेचीदगियों का आभाव-सा ही रहता है। इसलिए इस प्रकार की भूल की सम्भावना नहीं के बराबर ही रहती है। फिर ऐसा अधिकार देने का परिणाम यह होगा कि पंचायतों के अधिकांश निर्णय अन्तिम अवस्था को पहुँच ही नहीं पायेंगे। अतः पंचायतों को पुनरावलोकन का अधिकार न देना ही ठीक है।

अपील

पुनरावलोकन का अर्थ है अपने निर्णय को स्वयं संशोधित करना। अपील सुनने का अधिकार सदा निर्णय करनेवाली अदालत से ऊपर की अदालत को होता है ताकि यदि कहीं किसी कारण कोई भूल हो भी गई हो तो उसका संशोधन हो सके। दीवानी में तो यह अधिकार वादाधीन सम्पत्ति के मूल्य अथवा किसी विशेष कानूनी समस्या पर अवलम्बित रहता है, परन्तु फौजदारी में बहुत ही कम ऐसी परिस्थितियाँ हैं जहाँ प्रथम अपील के अधिकार भी न हों। अपील एक बड़ा महत्वपूर्ण अधिकार है। कानूनी

जगत में इसका बड़ा महत्त्व है, और आज जब पंचायतों को इतने पर्याप्त अधिकार दिये जा रहे हैं तो अपील का न होना खटकता है ।

कई राज्यों में अपील के अधिकार न्याय पंचायत के पूरे-के-पूरे पंच समुदाय को दिये गये हैं । कुछ राज्यों में इसके लिए तहसील न्याय पंचायतें बनाई गई हैं, और कहीं-कहीं साधारण अदालतों को ही यह अधिकार दिया गया है । साधारण अदालतों को यह अधिकार देने से अपीलों की पैरवी में वकीलों की उपस्थिति को वर्जित नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसा करना साधारण न्याय प्रक्रिया के विरुद्ध होगा और यदि वकीलों को पैरवी की अनुमति दे दी जाय, तो लगभग हर बाद में अपील और कानूनी पचड़ों को प्रोत्साहन मिलेगा । इससे मुकदमेबाजी बढ़ती है जिसे रोकने के लिए ही पंचायती न्याय की प्रथा का पुनःप्रचार किया जा रहा है ।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अपील के अधिकार साधारण न्यायाधीशों को देने से मुकदमेबाजी बढ़ने की ही संभावना रहेगी । जहाँ यह अधिकार न्याय पंचायतों के समस्त पंचों के समुदाय को दिये गये हैं वहाँ भी कोरम, पंचों का परिवर्तन, बहुमत-न्याय में दोष तथा सर्व सम्मत निर्णय प्राप्त करने में अड़चनें आदि कठिनाइयाँ रहती हैं ।

ऐसी परिस्थिति में इस समस्या का हल यही दिखाई देता है कि अपील का अधिकार अवश्य रहे, पर जिस प्रकार किशोर अपराधियों के अपराधों की सुनवाई के लिए पृथक न्यायालय होते हैं, इसी तरह न्याय पंचायतों की अपील को सुनने के लिए पृथक

न्यायाधीश हों। हर जिले में इस प्रकार का एक न्यायाधीश हो जो दौरा करके इन अपीलों को सुने और उसी स्थान पर निर्णय दे। इस पद पर अच्छी प्रतिष्ठासम्पन्न न्यायाधीश होने चाहियें। रिटायर्ड व्यक्ति भी रखे जा सकते हैं। इन न्यायाधीशों की नियुक्ति पंचायत अधिनियम के अधीन होगी, अतः उनके समक्ष वकीलों द्वारा पैरवी वर्जित होगी। इस तरह के न्यायाधीशों की नियुक्ति से न्याय पंचायतों तथा पंचों को पर्याप्त प्रशिक्षण भी मिल सकेगा। इस प्रकार पंचायती न्याय सुलभ तथा सत्य पर आधारित होने के साथ सुचारू तथा कानून की मौलिक धारणाओं के अनुकूल भी होता जायेगा।

निगरानी

इसमें केवल यही देखा जाता है कि कहीं न्याय पंचायत ने अपने अधिकारों का उल्लंघन तो नहीं किया है। यह एक वैध प्रश्न है और इसका सम्बन्ध हमारी अन्य अदालतों से भी है, क्योंकि जब यह निर्णय हो जायेगा कि न्याय पंचायत को अमुक वाद सुनने का अधिकार नहीं है तो वह वाद साधारण अदालतों में ही जायेगा। अतः निगरानी के अधिकार साधारण न्यायालयों में ही रहने चाहियें। साधारणतया हर राज्य में ऐसी व्यवस्था है। इसमें किसी विशेष परिवर्तन की आवश्यकता नहीं।

: ८ :

पंचायतों का माण्डलिक संगठन

पंचायतों के कार्यक्षेत्र की चर्चा करते समय हमने पंचायतों के माण्डलिक संगठन का उल्लेख किया था। इस संगठन से हमारा आशय एक ऐसे शासन प्रबन्ध से है जिसमें गाँव जैसी छोटी इकाई से लेकर तहसील, नगर, जिला और यहाँ तक कि पूरे प्रान्त, देश तथा विश्व तक के प्रबन्ध की कल्पना पंचायत राज की धारणाओं के अनुसार की गई है।

नगर पंचायत

सरल भाषा में नगर का अर्थ है एक बड़ा ग्राम, जिसमें बाजार हों, मण्डी हो और आबादी इतनी घनी हो कि उसमें कोई कृषियोग्य भूमि न हो। परन्तु यह बड़ी अव्यक्त और अनिश्चित धारणा है। हमें अब अपनी धारणाएँ निश्चित करनी पड़ेंगी।

नगर

पंचायत राज की इस धारणा के अनुसार नगर वह इकट्ठा बसा हुआ क्षेत्र होगा जिसकी जनसंख्या ५००० से कम न हो और २५,००० से अधिक न हो।

पुर

उस इकट्ठे बसे हुए क्षेत्र को पुर कहा जायेगा जिसकी जनसंख्या २५,००० से अधिक हो।

नगर तथा पुर की स्थानीय स्वशासनिक संस्थाओं का नाम

नगर तथा पुर पंचायत होगा। जब नगर उपरोक्त नगर की व्याख्या से आगे बढ़ कर पुर की कोटि में प्रवेश करता है, तभी सब सामाजिक रोग उत्पन्न होते हैं। बड़े शहरों में आज दानवता का राज्य रहता है। साथ बसनेवाले पड़ोसी के साथ मातृ-भाव नहीं होता। कृषि से द्वेष हो जाता है। मनुष्य एक मशीन बन जाता है। मशीनों, कलों, दूकानों व दफ्तरों की दुनिया में रचना नहीं होती। वहाँ मानव प्रेम से हृदय का स्पन्दन रुद्र हो जाता है। तभी तो वहाँ जिन आन्दोलनों का जन्म होता है वे मानव के मौलिक भावों से पूर्णतया रहित होते हैं। इन शहरों का ग्रामों या छोटे-छोटे नगरों में तोड़ा जा सकना सम्भव नहीं है। परन्तु मानवता के भावों को सजग तथा संचलित रखने के लिए पंचायत की इकाई यहाँ भी कायम करनी होगी। हमारे मत में हर १००० जनसंख्या के पीछे एक सदस्य पंचायत में जाये। प्रारम्भिक विद्यालय का निर्माण भी इन्हीं धारणाओं के अनुसार होगा, अर्थात् हर १००० जनसंख्या के लिए, जिसे इस स्तर पर महल्ला कहा जायेगा, एक प्रारम्भिक पाठशाला होगी।

ऐसे ५ महल्लों के लिए एक माध्यमिक या उच्च पाठशाला होगी। यदि पुर की जनसंख्या २५,००० से अधिक हो तो पंचायत सदस्य संख्या कम-से-कम २५ और अधिक-से-अधिक ५० होगी। यह इस प्रकार किया जा सकेगा कि पंचायत में प्रतिनिधि का चुनाव पहले प्रति महल्ला, फिर प्रति दो महल्ला तथा इसी प्रकार बढ़ते-बढ़ते पाँच महल्लों तक का हो सकता है। यदि पुर की जनसंख्या २,५०,००० से अधिक हो तो २५ महल्लों के लिए एक उप-पंचायत स्थापित होगी, और उप-पंचायत

पुर पंचायत के लिए एक-एक प्रतिनिधि भेजेंगी ।

नगरों तथा पुरों के प्रत्येक स्कूल के साथ एक औद्योगिक केन्द्र होगा । प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय के साथ एक बड़ा औद्योगिक केन्द्र होगा जो शिक्षा विभाग के नीचे होगा । प्रत्येक प्रारम्भिक पाठशाला का औद्योगिक केन्द्र प्रारम्भिक प्रशिक्षण देगा । माध्यमिक शिक्षालयों की आय का हिसाब-किताब रखा जायेगा । आय शिक्षा विभाग के हिसाब में जायेगी । अतः इस स्तर पर ग्राम विद्यालय का कृषिक्षेत्र उद्योग क्षेत्र में बदल जायेगा । इस स्तर पर वन नहीं होंगे । अतः यहाँ कृषि व वनों द्वारा आय सम्भव न होगी और आय के लिए अधिक मात्रा में कई प्रकार के कर लगाये जायेंगे । इससे पर्याप्त आय हो सकेगी । यद्यपि यहाँ निशुल्क श्रम पर्याप्त मात्रा में न मिल सकेगा, तो भी इस स्तर की आय इतनी होगी कि नगर पंचायत मजदूरी देकर भी काम करवा सकेगी ।

उच्च शिक्षा देने का भार नगर व पुर पंचायतों पर होगा । यहाँ शिक्षणालय व विद्यालय होंगे जिनमें ग्रामीणों को भी शिक्षा की सब सुवधाएँ प्राप्त होंगी । माध्यमिक शिक्षा के बाद शिक्षा रिहायशी विश्वविद्यालयों द्वारा दी जायेगी । छात्र वहीं रहेंगे । माध्यमिक स्कूलों की अन्तिम परीक्षाएँ भी इन्हीं विश्व-विद्यालयों के अधीन होगी । ऐसे विश्वविद्यालय पंचायतों द्वारा आयोजित न होकर सरकार के अधीन होंगे, अतः इनके बारे यहाँ अधिक व्योरे के साथ विचार नहीं किया जायेगा ।

स्वास्थ्य सहायता

नगरों तथा पुरों में स्वास्थ्य सेवाओं को नये ढंग से आयो-

जित करना होगा। प्रत्येक डाक्टर के जिम्मे एक सीमित क्षेत्र किया जायेगा और डाक्टर या वैद्य की योग्यता की कसौटी यह होगी कि उसने लोगों के स्वास्थ्य को कितना उन्नत किया है। निजी कारोबार तथा फीसों की सुविधा नहीं रहेगी।

कानूनी पेशा

नगरों में एक बड़ी समस्या कानूनी पेशे की होगी, क्योंकि नगर तथा पुर पंचायत में भी न्याय पंचायत होगी और यहाँ भी न्याय पंचायत में वकीलों को नहीं आने दिया जायेगा। फल यह होगा कि बहुत से वकीलों को काम नहीं मिलेगा और वे बेकार हो जायेंगे। ऐसे बेकार वकीलों के लिए काम ढूँढना पड़ेगा। पंचायत तो सब के लिए सुख-समृद्धि में विश्वास रखती है। अतः वकीलों की सेवाओं के समाजीकरण की योजना बनाई जा सकती है। हमारा सुझाव यह है कि क्योंकि न्याय पंचायतों के न्याय सम्बन्धी अधिकार सीमित होंगे और इनके अधिकार से बाहर मुकदमों के लिए अदालतों की आवश्यकता रहेगी, इसलिए यह हो सकता है कि परिमित संख्या की पंचायतों के लिए केन्द्रीय अदालत हो और उसमें एक निश्चित संख्या में वकीलों की नियुक्ति की जाये। इनको निश्चित वेतन दिया जायेगा। इनका कर्तव्य सम्बन्धित न्यायालयों को कानूनी मंत्रणा देना होगा। इसके अतिरिक्त अदालत उनमें मुकदमों की पैरवी का काम बाँट देगी। इससे वकीलों द्वारा गवाहों का पढ़ाया जाना या झूठे मुकदमों का बनाया जाना बन्द हो जायेगा और उनके लिए मुकदमेबाजी के बढ़ने में कोई आकर्षण नहीं रहेगा।

इस प्रकार वकीलों के रखे जाने से व्यय बढ़ेगा। इसके

लिए वकीलों के वेतन आदि पर होनेवाले व्यय को पूरा करने के लिए कानूनी-सहायता-शुल्क नामक फीस दावे तथा आवेदन पत्र आदि के साथ ही वसूल की जा सकती है। इसकी दरों को निश्चित करके उनकी तालिका बना दी जायेगी। इस प्रकार वह वकील जिसे आज पंचायतों का शत्रु समझा जाता है, पंचायतों के संवर्धन तथा समृद्धि का साधन बन जायेगा।

व्यापार

ग्राम पंचायत के स्तर पर व्यापार के प्रश्न पर संक्षिप्त विचार किया जा चुका है। ग्रामों में प्रस्तावित नये व्यापार का यह ढाँचा उस समय तक फलीभूत न होगा जबतक कि उसकी मौलिक धारणाओं को नागरिक जीवन में भी लागू नहीं किया जायेगा। इसलिए इस स्तर पर भी पूरा थोक व्यापार सहकारी सभाओं के आधीन होना चाहिये। यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि वर्तमान सहकारी सभा एकट ठीक नहीं है। इसलिए एक नया कानून बनाना पड़ेगा। यह कानून ऐसा होना चाहिये कि वह व्यापारी को अपनी ओर आकर्षित कर सके। इसके ध्येय निम्न होंगे —

(१) जहाँतक आवश्यकता की वस्तुओं के व्यापार का सम्बन्ध है, वह केवल सहकारी सभाओं के ही द्वारा होगा।

(२) मुनाफे की अधिकतम दर २० प्रतिशत होगी। इस प्रकार सरकार को भी घाटे की कोई सम्भावना न रहेगी। नगरों में हर ५ महल्लों के लिए एक बहुद्देशीय सहकारी सभा होगी। इस तरह नगरों और पुरों में भी सहकारी सभाओं की उन्नति होगी। थोक व्यापार सहकारी संघों द्वारा किया जायेगा।

सहकारी बैंक तथा सहकारी कारपोरेशनों का प्रसार भी तेजी के साथ किया जा सकेगा । जब थोक व्यापार इस प्रकार आयोजित हो जायेगा और खुदरा व्यापार के मुनाफे भी स्वयमेव ठीक होते जायेंगे, तो उमे सहकारी संगठन के नियमों के अनुसार संचालित करना कठिन नहीं रहेगा ।

नगरों तथा पुरों में भी खाद्यान्न का प्रश्न कोई विशेष कठिनाई उपस्थित नहीं करेगा, क्योंकि ५ महल्लों के लिए बनाई गई बहुद्देश्यीय सहकारी सभा इस काम को भली प्रकार कर सकेगी । नगर अथवा पुर पंचायत की आय-व्यय का ठीक अनुमान पेश करना संभव नहीं है क्योंकि प्रत्येक नगर तथा पुर की आय के साधन इतने भिन्न होंगे कि नमूने के तौर पर भी अनुमान करना कठिन होगा और हर पंचायत का अनुमान दूसरी पंचायत से बहुत भिन्न होगा ।

इस प्रकार स्थानीय स्वायत्त शासन को एक ऐसी शैली निर्मित होगी जिसके नीचे नगर तथा ग्राम एक-दूसरे के निकट आयेंगे । एक-दूसरे पर निर्भरता बढ़ेगी और ग्राम तथा नगर की लड़ाई समाप्त हो जायेगी ।

तहसील पंचायत

आजकल की तहसील भी ग्रामों की तरह एक अस्त-व्यस्त संगठन है । इसकी कोई मर्यादा नहीं है । इसको कभी किसी योजना के अनुसार संगठित नहीं किया गया । पंचायत राज के ध्येयों के अधीन यह आवश्यक है कि हर इकाई को युक्तिसंगत बनाया जाये । कुदरती तौर पर तहसील ग्राम तथा नगरों का एक ऐसा समुच्चय होता है जो सुशासन के लिए आवश्यक समझा जाता

है। इस योजना के अंतर्गत १०० पंचायत क्षेत्रों से मिलकर एक तहसील बनेगी। तहसील का केन्द्र स्थान तहसील के किसी केन्द्रीय नगर अथवा पुर में होगा। ऐसी योजना के अधीन हर तहसील का एक निश्चित तथा लगभग बराबर क्षेत्र होगा और यह युक्तिसंगत भी होगा।

तहसील स्तर पर तहसील पंचायत बनाई जायेंगी। इसमें ग्राम पंचायतों के प्रतिनिधि तथा तहसील स्तर के विभिन्न विभागों के अधिकारी होंगे। तहसीलदार, तहसील-ओवरसीयर, तहसील-डाक्टर, तहसील-वनाधिकारी तथा सहकारी संस्थाओं के तहसील इन्स्पेक्टर आदि तहसील पंचायत के सदस्य हो सकते हैं। तहसीलदार को उसके पद के नाते तहसील पंचायत का प्रधान बनाया जा सकता है। नगर तथा ग्राम पंचायतों को तहसील पंचायत में समान प्रतिनिधान प्राप्त होगा। इसका फल यह होगा कि ग्रामों तथा नगरों के मध्य सरकारी सरपरस्ती में सजीव सहयोग उत्पन्न होगा। साथ ही जनता तथा सरकारी कर्मचारियों का वैमनस्य भी सहयोग तथा मित्रता की भावनाओं में बदल जायेगा। इस प्रकार जनता तथा शासन के विभिन्न विभागों के सजीव सहयोग द्वारा रचना के एक नवयुग का उदय होगा। समस्त अंग देश के पुनर्निर्माण के कार्य में जुट जायेंगे। तहसील पंचायत ग्रामीण तथा नागरिक जीवन को निकट लाने की पहली कड़ी होगी। इसी प्रकार व्यापारिक क्षेत्र में भी इस स्तर पर सहकारी सभाओं का एक संघ होगा और यह व्यापार क्षेत्र में ग्रामीण तथा नागरिक जीवन में सहयोग पैदा करेगा और मैत्री तथा सहयोग की सृष्टी का यह प्रयत्न इस तरह और बढ़ेगा।

ग्रामों के विद्यालयों तथा कृषि व उद्योग क्षेत्रों की उपज को इन सहकारी संघों द्वारा मंडियों तक पहुँचाया जा सकेगा। तहसील पंचायत इस प्रकार ग्राम तथा नगर पंचायतों के आपस में मिलने-जुलने के स्थान तथा ढंग पैदा करेगी। इसी के साथ यह प्रारम्भिक ग्राम व नगर पंचायतों को समुचित मंत्रणा तथा निर्देश देती रहेगी और उनके संवर्धन तथा उन्नति के लिए प्रयत्न करेगी। तहसील पंचायत को कोई न्याय सम्बन्धी अधिकार न होंगे।

तहसील पंचायत के कर्तव्य निम्न होंगे—

(१) पंचायत के कार्यक्रम तथा उनके वैध नियमादि से परिचय कराने के लिए साहित्य प्रकाशित करना।

(२) प्रारम्भिक पंचायतों के काम की पड़ताल तथा देख-भाल।

(३) प्रारम्भिक पंचायतों को हर मामले में मंत्रणा देना।

(४) प्रारम्भिक पंचायत को वनों के प्रबन्ध लिए कार्यक्रम बना कर देना।

(५) एक पंचायत से दूसरी पंचायत तक उपज के ले जाने के ऐसे उपाय सोचना जिससे कण्ट्रोल की बुराइयों से बचा जा सके।

(६) प्रारम्भिक पंचायतों के काम का निरीक्षण।

(७) प्रारम्भिक पंचायतों की योजनाओं की पड़ताल तथा अनुमोदन।

(८) प्रौढ़ शिक्षा का प्रबन्ध करना।

(९) जनता को सामाजिक शिक्षा देने के लिए वर्तमान

मेलों को उन्नत करके उनका इस्तेमाल करना ।

(१०) पुस्तकालय खोलना तथा कृषि सम्बन्धी, सांस्कृतिक और सामाजिक मेले आयोजित करना ।

(११) पंचायत सम्मेलन बुलाना ।

(१२) पंचों के लिए शिक्षण शिविर खोलना ।

यह केवल एक सांकेतिक सूची है । इसमें परिस्थितियों के अनुसार अधिकता-न्यूनता की जा सकती है ।

तहसील पंचायत जिला तथा ग्राम पंचायत को जोड़नेवाली मध्यवर्ती कड़ी होगी ।

तहसील पंचायत का एक वैतनिक मंत्री होगा । इसका एक पुस्तकालय तथा अपना कार्यालय होगा । इस पंचायत के सदस्य सरकारी कर्मचारियों को कोई भत्ता नहीं मिलेगा और उनको यह कार्य अपने पद के कर्तव्यों में ही समझ कर करना होगा । परन्तु गैर - सरकारी सदस्यों को प्रति बैठक भत्ता दिया जायेगा । साधारणतया प्रति मास एक बैठक होगी । पंचायत के व्यय बहुत थोड़े होंगे । अतः इस स्तर पर अन्य कर लगाने का सुझाव अनुचित है । अतः प्रस्ताव यह है मालगुजारी (भू-राजस्व) की स्वाई (जिसे पिछले पृष्ठों में ग्राम पंचायतों को देने का प्रस्ताव रखा गया था) हर तहसील की तहसील पंचायत को मिले । तहसील पंचायत अपना खर्च निकालकर बाकी ग्राम पंचायतों को बाँट दे । तहसील पंचायत के व्यय का अनुमान इस प्रकार है—

संख्या	मद	व्यय
१. मन्त्री	(१५० + ५० रुपया)	२४०० रुपया
२. दो क्लर्क	(७०.६० + ३० रुपया)	२४०० रुपया

३. दो चपरासी	(२५ + २० रुपया)	१०८० रुपया
४. पुस्तकालय तथा संग्रहालयरक्षक	(८० + ३० रुपया)	१३२० रुपया
५. पंचों का भत्ता (१० रुपया प्रति पंच प्रति बैठक)		१२०० रुपया
६. पुस्तकें तथा अन्य आवश्यकताएँ		४६०० रुपया
		<u>१३,००० रुपया</u>

इस पंचायत का अपना एक छोटा-सा संग्रहालय (अजायब-घर) भी होगा। जहाँतक विशेष मन्त्रणा का सम्बन्ध है, वह तहसील स्तर के अधिकारियों से निशुल्क उपलब्ध होगी।

जिस प्रकार हर ग्राम पंचायत के साथ एक बहुद्देश्यीय सहकारी सभा होगी, उसी प्रकार तहसील स्तर पर सहकारी सभाओं का एक संघ होगा। पंचायत क्षेत्र की सहकारी सभाएँ इस संघ की एक सदस्य होंगी। प्रत्येक ऐसी सभा इस संघ के २००० रुपये के भाग खरीदेगी और फिर ५०० रुपया प्रति वर्ष लेखा परीक्षण शुल्क संघ को देगी। यह संघ तहसील स्तर पर थोक व्यापार भी करेगा। अमानतों का विभाग इस कार्य के लिए पर्याप्त राशि उपलब्ध करेगा। पंचायती सहकारी सभा की उपज का निर्यात भी इन्हीं संघों द्वारा हो सकेगा। आय-व्यय के हिसाब का निरीक्षण भी यही संघ करेंगे और ये पंचायती सहकारी सभाओं को मन्त्रणा भी देते रहेंगे। केवल आय-व्यय निरीक्षण शुल्क से ही ५००० रुपया की वार्षिक आय हो जायेगी और इस आय से संघ-मन्त्री तथा आय-निरीक्षक की नियुक्ति हो सकेगी। शेष व्यय की रकम लाभ से प्राप्त होगी। पंचायती सहकारी सभाएँ तथा तहसील सहकारी

संघ पंचायतों से पूर्ण सहयोग रखेंगे ।

जिला पंचायत

वर्तमान जिलों के मान इतने भिन्न हैं कि इनके पीछे कोई निश्चित सिद्धांत दिखाई नहीं पड़ता । पंचायत राज की योजना के आधीन जिलों का निर्माण भी एक निश्चित योजना के अधीन होगा । मोटेतौर पर योजना यह होगी कि १० तहसीलों का एक जिला हो । ज्यों ही हम जिले के निर्माण तक पहुँचते हैं त्यों ही शासन की इकाइयों के युक्त निर्माण का क्रम स्वयमेव पूरा हो जाता है । इसी क्रम से प्रान्त निर्माण की पद्धति प्रकट होगी । एक इकाई दूसरी इकाइयों से सम्बन्धित तथा एक-दूसरी पर आश्रित होगी । इससे पारस्परिक सहायता तथा सहयोग के भाव जाग्रत होंगे ।

जिला पंचायत प्रारम्भिक ग्राम पंचायत से लेकर तहसील पंचायत तक की विभिन्न पंचायतों के क्रम में सबसे ऊपर होगी । हमारी धारणा के अनुसार जिला पंचायत का निर्माण इस प्रकार होगा—

जिला पंचायत अंशतः तो तहसील पंचायत द्वारा निश्चित प्रतिनिधान के आधार पर और अंशतः नामजदगी द्वारा निर्मित होगी । इस प्रकार प्रत्येक तहसील पंचायत जिला पंचायत में एक-एक प्रतिनिधि भेजेगी और जिला स्तर के सभी अफसर इसके लिए नाम-जद किये जायेंगे । डिप्टी कमिश्नर इस पंचायत का प्रधान होगा । स्कूलों के जिला इन्स्पेक्टर, जिला कृषि अफसर, जिला सहकारी अधिकारी, जिला डाक्टर, जिला इंजीनियर तथा वन विभाग के कंसर्वेटर इसके मनोनीत सदस्य होंगे ।

जिला पंचायत के कर्त्तव्य संक्षेपतः निम्न होंगे—

शिक्षा

जिला स्कूल इन्स्पेक्टर सरकारी कर्मचारी होते हुए भी पंचायतों के शिक्षा-कार्य में पूरी-पूरी सहायता देंगे । ये उन्हें मन्त्रणा देंगे तथा उनके स्कूलों के निरीक्षण का प्रबन्ध करेंगे । ध्येय तो यह है कि इस स्तर पर भी शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने का प्रयत्न किया जायेगा । उच्च शिक्षणालय सरकार के अधीन होंगे, परन्तु इनके साथ भी स्थानानुसार कृषि तथा उद्योग क्षेत्र होंगे जिनसे पर्याप्त आय होगी ताकि शिक्षा पर किया गया खर्च पूरा हो सके । शिक्षा का सब प्रबन्ध सरकार द्वारा स्वीकृत योजना के अनुसार होगा ।

स्वास्थ्य

प्रारम्भिक पंचायतों से ऊपर स्वास्थ्य का सब कार्य सरकार के अधीन होगा । इस विभाग में जिला पंचायत केवल प्रारम्भिक पंचायतों को मन्त्रणा देगी तथा निर्देश दिया करेगी । जिला डाक्टर जिला पंचायत को अपने विभाग की पूर्ण सहायता देगा और स्वीकृत योजना के अनुसार कार्य सम्पादन में मन्त्रणा तथा सहायता देगा । जिला मेडिकल अफसर जिला पंचायत द्वारा स्वास्थ्य विभाग के निर्देश जारी करेगा ।

सड़कें

जिला पंचायत के नीचे केवल वही सड़कें होंगी जो ग्राम पंचायत केन्द्र से तहसील तथा जिला केन्द्र तक जायेंगी । इस सम्बन्ध में विशेष मन्त्रणा जिला इंजीनियर दिया करेगा । समस्त सड़कों की देख-रेख, मरम्मत तथा निर्माण जिला पंचायत द्वारा स्वीकृत

योजना के अधीन होगा ।

अन्वेषण-केन्द्र

जिला पंचायत के लिए अन्वेषण केन्द्र भी होगा । इस केन्द्र का विशेष कार्य उन समस्त उपायों का अन्वेषण करना होगा जिनके प्रयोग में लाने से पंचायत राज तथा पंचायत कार्य उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ जन साधारण के लिए अधिक लाभदायक सिद्ध हो सके । अन्वेषण के मुख्य विषय होंगे कृषि, स्वास्थ्य तथा पंचायत कार्य पद्धति । इसके साथ एक छोटा कृषि तथा उद्योग क्षेत्र भी होगा । इसके अतिरिक्त एक जिला संग्रहालय तथा पुस्तकालय आदि भी इसके साथ होंगे । सम्बन्धित विभागों के जिला अफसर अपने-अपने विभाग-कार्य की देख-रेख आदि के लिए उत्तर दायी होंगे । इसका प्रबन्ध भी जिला पंचायत के अधीन होगा ।

व्यापार

पंचायत के साथ सहकारी आन्दोलन भी परिवर्धित होता रहेगा । जबतक पंचायती बहुक्षेत्रीय सहकारी सभाओं के लिए जिले में एक केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा सहकारी संघ न होगा तबतक वे उन्नति न कर सकेंगी । अतः जिला केन्द्र में एक केन्द्रीय सहकारी बैंक और एक केन्द्रीय सहकारी संघ होगा । समस्त सहकारी सभाएँ केन्द्रीय बैंक की और तहसील सहकारी संघ जिला संघ के सदस्य होंगे । प्रत्येक तहसील का सहकारी संघ इसका भागीदार होगा । व्यक्तिगत भागीदार भी हो सकते हैं । मोटेतौर से यह कहा जा सकता है कि यही संघ जिला स्तर पर थोक बिक्री का काम करेगा और उनकी उपज के लिए मंडियाँ ढूँढ़ेगा । बैंक आवश्यकता पड़ने पर प्रारम्भिक सभाओं

को ऋण देगा ।

सूचना केन्द्र

जिला पंचायत का एक सूचना केन्द्र भी होगा । यह विभाग प्रारम्भिक तथा तहसील पंचायतों के लिए आवश्यक तथा युक्त सूचनाएँ उपलब्ध करेगा । इस कार्य को पुस्तकरक्षक ही करेगा ।

आय के स्रोत

जिला पंचायत को आय के लिए कर लगाने पड़ेंगे । इस स्तर पर लगाये जा सकनेवाले कुछ कर ये हो सकते हैं—

१. व्यवसाय कर ।
२. मेला कर ।
३. घोड़ा-गाड़ी तथा बारबरदारी के पशुओं पर कर ।

इस आय के साथ-साथ सरकार से भी कुछ सहायता प्राप्त की जा सकती है । इन करों से हुई आय का अनुमान यह है—

संख्या	मद	आय
१. व्यवसाय कर (एक आना प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष)		३१,२५० रुपया
२. मेला कर (१०० रुपया प्रति मेला— १०० मेलों का)		१०,००० रुपया
५. घोड़ा-गाड़ी तथा बारबरदारी के अन्य पशु (लगभग)		१०,००० रुपया
		५१,२५० रुपया

आनुमानिक व्यय

जिला पंचायत के कम-से-कम कर्मचारी ये होंगे—एक

मंत्री, एक ओवरसियर, एक अध्यक्ष अन्वेषण केन्द्र, एक पुस्तकालय तथा संग्रहालयरक्षक, दो क्लर्क तथा पाँच चपरासी। इस स्टाफ के वेतन तथा अन्य व्यय का व्यौरा इस प्रकार होगा—

संख्या	मद	व्यय
१. मंत्री (२५० रुपया प्रतिमास)		३००० रुपया
२. ओवरसियर (१५० रुपया प्रति मास)		१८०० रुपया
६. अन्वेषण केन्द्र अध्यक्ष (३०० रुपया प्रति मास)		३६०० रुपया
४. पुस्तकालय तथा संग्रहालयरक्षक (२०० रुपया प्रति मास)		२४०० रुपया
५. दो क्लर्क (१०० रुपया प्रति मास)		२४०० रुपया
६. पाँच चपरासी (४० रुपया प्रति मास)		२४०० रुपया
७. स्टेशनरी तथा अन्य आवश्यकताएँ		३००० रुपया
८. अन्वेषण केन्द्र तथा पुस्तकालय		२००० रुपया
		२०,६०० रुपया

कार्य-शैली

जिला पंचायत की साधारणतया तीन मास में एक बैठक होगी। कोरम निर्धारित होगा। सारा दफ्तरी काम वैतनिक कर्मचारियों द्वारा किया जायेगा।

यह भी योजना है कि पंचायत का कार्यालय पंचायत के अपने भवन में हो। इनका निर्माण एक स्वीकृत नक्शे के अनुसार होगा। इस पंचायत का निर्माण भी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत होगा। यह नक्शा सारे देश के लिए एक-सा होगा। इस प्रकार जिला स्तर तक स्थानीय स्वराज का एक श्रृंखलाबद्ध तथा

अन्योन्याश्रति क्रम स्थापित हो जायेगा। सत्ता का मूल परिवार और ग्राम होगा। राजकीय कर्मचारी भी बराबर सहयोग देंगे। ग्राम की उन्नति तथा विकास की धारणा किसी भी स्तर पर भुलायी नहीं जायेगी। नगर भी अपनी स्वाभाविक अवस्था में आकर ग्राम और ग्रामीणों के पोषक बन जायेंगे। इस प्रकार एक वास्तविक लोकतंत्र को कार्यान्वित किया जा सकेगा जहाँ अधिकार और कर्तव्य हर समय जनता के पास ही रहेंगे। साथ ही पूरी-की-पूरी व्यवस्था बड़ी संगठित होगी। केन्द्रीय सत्ता केवल समाज सेवा के लिए होगी और वह भी उतनी ही मात्रा में जितनी कि मूल संस्थाएँ चाहें।

प्रांत, देश तथा विश्व का शासन

प्रांत का शासन

प्रान्तीय स्तर पर शासन की दो समस्याएँ सामने आती हैं—एक प्रबन्ध की और दूसरी कानून बनाने की। हमारी वर्तमान व्यवस्था के अंतर्गत कानून बनाने का कार्य निर्वाचित विधानमण्डल करता है और प्रबंध का कार्य विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी मंत्रिपरिषद् करती है। विधानमंडल के सदस्यों का निर्वाचन होता है। वर्तमान प्रणाली का मुख्य दोष यह है कि विधानमण्डलों के सदस्य अपने चुनाव के बाद जनता से सम्बन्ध खो बैठते हैं। चुनाव के पहले उनका केवल एक ध्येय होता है, और वह है सदस्यता के लिए वोट पाना। पाँच वर्ष के बाद जब अगला चुनाव होता है तो फिर यही क्रम दुहरा दिया जाता है। इससे लोकतंत्र की भावना का विकास नहीं हो पाता है।

पंचायत राज की हमारी धारणा के अन्तर्गत हमें विधान-

मण्डलों और उनके चुनाव के मौजूदा स्वरूप को बदलना होगा। इसके अनुसार प्रान्तीय शासन जिला शासन पर आधारित होना चाहिये। गांधीजी भी इसी मत के थे। उनके अनुसार तो प्रान्तीय शासन का प्रधान भी निर्वाचित होना चाहिये और उसका निर्वाचन जिला पंचायतों के सदस्यों द्वारा होना चाहिये।

हमारे मत में जिला पंचायतों के सभी निर्वाचित सदस्य प्रांत के विधानमण्डल के भी सदस्य हों। यदि यह संख्या बहुत अधिक हो तो चुनाव द्वारा एक निश्चित संख्या में सदस्य चुने जा सकते हैं। विधानमण्डल के सदस्य पहले अधिवेशन में एक अध्यक्ष तथा एक नेता का निर्वाचन करेंगे। अध्यक्ष विधानमण्डल के अधिवेशनों की अध्यक्षता करेगा तथा प्रांत का प्रमुख होगा। नेता अपना मंत्रिमण्डल मनोतीत करेगा। यों तो मंत्रियों की संख्या आवश्यकतानुसार निश्चित की जा सकती है, पर साधारणतया मंत्रियों की संख्या पाँच ही होनी चाहिये। नेता को, यदि आवश्यक हो तो, किसी गैर-सदस्य को भी मंत्री के रूप में लेने का अधिकार होना चाहिये।

विधानमण्डलों के अधिवेशन नियत समय पर हुआ करेंगे। इनका मुख्य कार्य कानून बनाना होगा। अपनी तहसील अथवा ग्राम पंचायत का विश्वास खो देनेवाले व्यक्ति को विधानमण्डल की सदस्यता छोड़नी पड़ेगी। यह बात नेता तथा अध्यक्ष पर भी लागू होती है। इस प्रकार से निर्मित विधानमण्डल का प्रत्येक सदस्य अपने प्रान्त, जिले, तहसील तथा गाँव की परिस्थितियों से परिचित होगा। इस प्रकार कानून बनानेवालों और उसका पालन करनेवालों में निकट सम्बन्ध बना रहेगा।

ग्रामों के संगठन पर आधारित शासन का यह स्वरूप शासन के भार को कम करेगा, करों के बोझ को हल्का करेगा, उसे प्रांत के साधनों के भीतर सीमित रखेगा और उसे वास्तविक अर्थों में लोकतांत्रिक बनायेगा ।

देश का शासन

देश का प्रबन्ध करने के लिए निर्वाचित विधानमण्डल (संसद्) का चुनाव इस प्रकार होना चाहिये कि हर ग्राम पंचायत का एक वोट माना जाय । हर उम्मीदवार कम-से-कम दो पंचायतों द्वारा नामजद किया जाये । चुनाव के लिए प्रचार नहीं किया जा सकेगा । उम्मीदवारों के सम्बन्ध में राज्य पूरा विवरण हर पंचायत के पास भेजेगा । उन सब व्यक्तियों पर हर पंचायत विचार करके उपयुक्त व्यक्तियों के पक्ष में मत देगी । इस प्रकार पंचायतों द्वारा सदस्यों का चुनाव होने से हर संसद्-सदस्य का पंचायतों के साथ सजीव सम्बन्ध बन जायेगा । पंचायतों को अधिकार होगा कि वे किसी भी अनुपयुक्त सदस्य को किसी भी समय उसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास कर वापस बुला लें और उसके स्थान पर नया सदस्य चुन लें । प्रधान मंत्री का चुनाव संसद् के सदस्य करेंगे । वह अपनी मंत्रिपरिषद् बनायेगा जो संसद् के प्रति उत्तरदायी होगी । पर राष्ट्रपति का चुनाव पंचायतें करेंगी ।

देश का शासन प्रधान मंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद् के सदस्य मंत्री चलायेंगे । संसद् का मुख्य काम कानून बनाना और शासन पर नियंत्रण रखना होगा । विशेष परिस्थितियों में राष्ट्रपति संसद् तथा मंत्रियों के कार्य कर सकेगा ।

पूरे देश के शासन की चर्चा करते समय न्याय की व्यवस्था पर भी ध्यान देना होगा। ग्रामीण स्तर पर न्याय की चर्चा हम पहले कर चुके हैं, पर उससे ऊपर के स्तर का विचार अभी-तक नहीं किया गया था।

न्यायालयों को कई बार शासन के विरुद्ध भी फैसले देने पड़ते हैं। इसलिए न्याय विभाग की स्वतन्त्रता पर कोई आँच नहीं आनी चाहिये। विभिन्न देशों में इसके लिए विभिन्न प्रणालियाँ प्रचलित हैं। हमारे मत में देश के सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा मंत्रिपरिषद् की परामर्श पर होनी चाहिये। मुख्य न्यायाधिपति की पद-विमुक्ति केवल संसद् के प्रस्ताव पर ही हो सकेगी। मुख्य न्यायाधिपति की मंत्रणा से राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों को नियुक्त करेगा। प्रान्तों के लिए न्यायतंत्र की स्थापना सर्वोच्च न्यायालय करेगा, और प्रान्तीय न्यायालय जिलों तथा अन्य न्यायालयों की स्थापना करेंगे। इस तरह से अपने प्रबन्ध में पूर्ण-स्वतन्त्रता मिल जाने से न्यायतंत्र की स्वतन्त्रता भी निश्चित हो जायेगी।

विश्व-शासन

मनुष्य में समस्त विश्व को एक ही शासन में लाने की भावना आदिकाल से विद्यमान है। प्राचीन भारत के चक्रवर्ती सम्राट, सिकन्दर और चंगेज जैसे महान् विजेता, और हिटलर जैसे दुःस्साहसी आक्रान्ता—सभी ने किसी-न-किसी प्रकार इसे साकार करने की चेष्टा की थी।

बीसवीं सदी में ऐसी विश्व-व्यवस्था के निर्माण की दिशा

में पहला कदम प्रथम विश्व युद्ध के बाद उठाया गया था । राष्ट्र संघ की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई थी कि वह संसार में शांति और व्यवस्था कायम रख सके । पर संगठन की आधार-भूत कमजोरियों और इसके पास ठोस शक्तियों का अभाव होने के कारण यह संस्था सफल न हो सकी ।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् बनाया गया संयुक्त राष्ट्र संघ इन बातों में पिछले राष्ट्र संघ से अधिक अच्छा है, और विश्व के गुटों में बँटे होने और अविश्वास और भय के वातावरण के बावजूद इसने अपने अभिकरणों तथा अन्य संस्थाओं के द्वारा मानव जाति की महती सेवा की है ।

इस प्रकार विश्व-व्यवस्था तथा विश्व-शांति को बनाये रखने के उद्देश्य से निर्मित ये सभी संस्थाएँ मनुष्य की उसी पुरानी आंतरिक मानसिक भावना के कारण ही हैं जिसके अन्तर्गत आदि-काल से कई व्यक्तियों ने संसार को एक व्यवस्था में लाने की चेष्टाएँ की थीं ।

पर इन संस्थाओं की आधारभूत कमजोरी यह है कि सदा से इन पर बलशाली राष्ट्रों की प्रभुता जमी रही है । इन महान् राष्ट्रों की परस्पर विरोधी भावनाओं के रहते विश्व-शांति और विश्व-व्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती । जबतक विभिन्न राष्ट्रों के पास अपने-अपने सैन्य तथा अस्त्र बल रहेंगे, ऐसी व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकेगी । अतः जबतक अखिल विश्व के स्तर पर किसी ऐसी संस्था का निर्माण नहीं होता जो सभी राष्ट्रों की प्रतिनिधि हो, तबतक इस उद्देश्य से स्थापित की गई कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था सफल नहीं हो सकेगी । मेरे मत के

अनुसार निर्मित विश्व-संघ को संसार का प्रत्येक राष्ट्र कुछ अधिकार प्रदान करेगा। ये अधिकार बहुत-कुछ उसी अधिकार जैसे होंगे जैसे कि इकाइयों में शांति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए और उनके पारस्परिक सम्बन्धों को अच्छा रखने के लिए संघीय शासन के देशों में उनके केन्द्र को प्राप्त होते हैं। संघीय शासन में सेना केवल केन्द्र का विषय होता है। विश्व-संघ के सदस्य अपने-अपने देश के अन्दर अपनी-अपनी सुरक्षा के लिए तो सेना रख सकेंगे, परन्तु दूसरे देश में प्रविष्ट होनेवाली सेना इसी संस्था के अधीन होगी। इन शक्तियों से सम्पन्न संस्था ही प्रभावशाली हो सकती है। यह संस्था बाकायदा निर्वाचित होनी चाहिये। हर देश की संसद् अपनी जनसंख्या के आधार पर अपने प्रतिनिधि विश्व शासन-मण्डल में भेजेगी। यह मण्डल अपनी एक संचालक परिषद् नियुक्त करेगा। इससे एक पूर्ण रूपेण प्रतिनिधि विश्व-संस्था का निर्माण सम्भव हो सकेगा। ऐसा विश्व शासनमण्डल वस्तुतः ग्रामों का प्रतिनिधि होगा। जबतक ऐसी प्रतिनिधि और प्रभावशाली संस्था नहीं बनती, तबतक विश्व-कल्याण के सपने पूर्ण होने सम्भव नहीं। जब एक ऐसा तन्त्र निर्मित हो जायेगा तब शनैः-शनैः अहिंसात्मक विचारधारा नीचे से विकसित होती तथा पनपती हुई ऊपर को बढ़ेगी। अधिक-से-अधिक अधिकार ग्रामों को मिलते जायेंगे और एक शासन निरपेक्ष समाज की धारणा से क्रियान्वित होनेवाले लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव हो सकेगा। शासन निरपेक्ष समाज की रचना शासन-विहीन समाज की धारणा से इस बात में भिन्न है कि शासन-निरपेक्ष समाज में शासन केवल इसलिए शेष रहता है कि कोई व्यक्ति, दल अथवा राष्ट्र शक्ति हथियाने

का प्रयत्न न कर सके ।

स्पष्ट है कि इनमें से कई प्रस्ताव ऐसे हैं जो सामान्य पाठक को आज अद्भुत तथा अव्यवहारिक लग सकते हैं । परन्तु हर नयी विचारधारा आरम्भ में ऐसी ही लगती है । पंचायत राज की इस धारणा के पीछे संदियों का अनुभव है । यह व्यवस्था आज की उथल-पुथल की दुनिया के सामने प्रगति, शांति और सुख का एक व्यवहारिक नक्शा प्रस्तुत करती है ।



